जनवरी-मार्च प्रवेशांक
वर्ष 2024

त्रैमासिक ई-पत्रिका
अंक 1

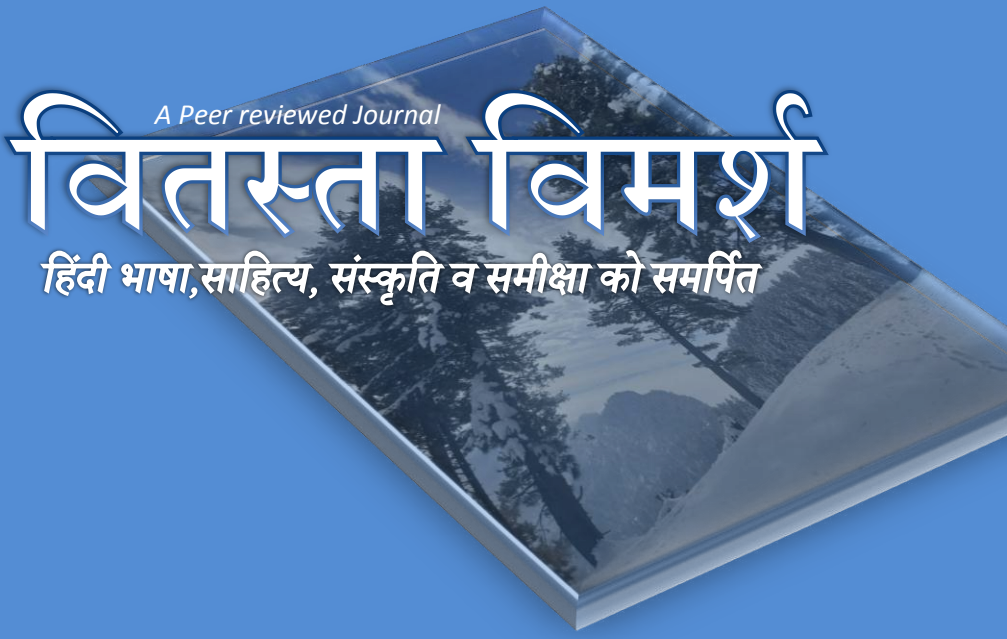

A Peer reviewed Journal

वितस्ता विमर्श

हिंदी भाषा,साहित्य, संस्कृति व समीक्षा को समर्पित

सम्पादक
डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट

वितस्ता विमर्श

हिंदी भाषा, साहित्य, संस्कृति व समीक्षा को समर्पित

सम्पादक

डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट
श्रीनगर, जम्मू व कश्मीर
ईमेल- mudasirhindi@gmail.com
मो. 9682593408

वितस्ता विमर्श एक अव्यवसायिक त्रैमासिक ई-पत्रिका है।
वर्ष में ४ अंक प्रकाशित होंगे
१-१५ अप्रैल तक जनवरी-मार्च अंक
१-१५ जुलाई तक अप्रैल-जून अंक
१-१५ अक्टूबर तक जुलाई-सितम्बर अंक
१-१५ जनवरी तक अक्टूबर-दिसम्बर अंक
प्रत्येक अंक के लिए रचनाएँ भेजने, दिशा-निर्देश तथा अन्य जानकारी www.vitastavimarsh.com पर

© *सर्वाधिकार सुरक्षित*

वितस्ता विमर्श अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र श्रीनगर, जम्मू व कश्मीर से प्रकाशित होने वाली प्रथम त्रैमासिक ई-पत्रिका है। अतः इस पत्रिका के साथ जुड़ें और हमें सहयोग दें। vitastavimarsh1@gmail.com पर अपनी रचनाएँ प्रेषित करें और अपने सुझावों से पत्रिका को समृद्ध करें।

वितस्ता विमर्श पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं व आलेखों की मौलिकता का दायित्व स्वयं रचनाकारों, लेखकों का है। रचनाओं व आलेखों में व्यक्त विचारों से संपादक व संपादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी प्रकार के विवाद में न्यायक्षेत्र केवल श्रीनगर, जम्मू व कश्मीर होगा।

सम्पादक

डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट

श्रीनगर, कश्मीर

email: mudasirhindi@gmail.com

Cell: 9682593408

सह सम्पादक

डॉ. अमृता सिंह

श्रीनगर, कश्मीर

email: amrita.ku26@gmail.com

Cell: 9622911777

परामर्श मंडल

प्रो. ज़ोहरा अफ़ज़ल

पूर्व कला-संकाय अध्यक्ष व हिंदी विभाग अध्यक्षा

कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर कश्मीर १९०००६

email: profzohra@gmail.com

Cell: 9419533874

प्रो. विनोद कुमार तनेजा

पूर्व विभाग अध्यक्ष, हिंदी विभाग,

गुरु नानक देव विश्वविद्यालय,

अमृतसर, पंजाब

email: vikut41@yahoo.in

Cell: 9876865695

प्रो. ज़ाहिदा जबीन

विभाग अध्यक्षा, हिंदी विभाग,

कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर कश्मीर १९०००६

email: zahida@kashmiruniversity.ac.in

Cell: 9419058585

प्रो. रुबी ज़ुत्शी

आचार्य, संगीत एवं ललित कला तथा

आचार्य हिंदी विभाग,

कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर १९०००६

email: rubyzutshi@gmail.com

Cell: 9419058585

प्रो. कहकशां एहसान साद
आचार्य, हिंदी विभाग
जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली
email: ksaad@jmi.ac.in

प्रो. मुहम्मद आशिक अली
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
email: ashiqaliamu@gmail.com

श्री अनिल शर्मा जोशी
अध्यक्ष वैश्विक परिवार व
पूर्व उपाध्यक्ष केन्द्रीय हिंदी शिक्षण मंडल,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
email: anilhindi@gmail.com
Cell: 9899552099

प्रो. जय कौशल
आचार्य, हिंदी विभाग
असाम विश्वविद्यालय, दिफू परिसर 782460
email: jaikaushalaudc@gmail.com
Cell: 09612091397

प्रो. संजय एल. मादार
अध्यक्ष हिंदी विभाग
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा,
खैरताबाद, हैदराबाद ५००००४
email: sanjaymadar@gmail.com
Cell: 9945664379

प्रो. करण सिंह ऊटवाल
आचार्य, हिंदी विभाग
मौलाना आज़ाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय
email: karan.utwal@manuu.edu.in
Cell: 9849441956

प्रो. मुहम्मद मेराज अहमद
विभाग अध्यक्ष
संस्कृत विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर कश्मीर १९०००६
email: drmeraj76@gmail.com
Cell: 9419755001

प्रो. महबूब सुबानी
भाषा विभाग
आई. एफ. आई. एम. कॉलेज
बेंगलुरू, कर्नाटक
email: mehboob.subani@ifim.edu.in
Cell: 9880787838

डॉ. सतीश विमल
लेखक, अनुवादक तथा आलोचक
श्रीनगर, जम्मू व कश्मीर
ईमेल: satishvimal@gmail.com
Cell: 941905917

सम्पादक मण्डल

डॉ. शगुफ्ता नियाज़
सहायक आचार्य हिंदी,
वीमेंस कॉलेज,
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

डॉ. सुशीला आर्या
हिंदी विभाग
चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय
भिवानी, हरियाणा
email: sushilaarya1970@gmail.com

डॉ. नाइरा कुरैशी
सहायक आचार्य
हिंदी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर १९०००६

डॉ. सब्ज़ार अहमद भट्ट
अनुवादक
राष्ट्रीय, प्रौद्योगिकी संस्था,
श्रीनगर, कश्मीर

डॉ. बिलाल अहमद कुठू
सहायक आचार्य
सरकारी महिला महाविद्यालय
ज़कूरा, श्रीनगर
email: bilal.kuthoo@gmail.com

डॉ. भारतेंदु कुमार पाठक
सहायक आचार्य
हिंदी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर
Cell: 7889760568

डॉ. नरेश कुमार सिहाग
विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर राजस्थान
email: nksihag202@gmail.com
Cell: 9466532152

डॉ. रेखा सोनी
आचार्य शिक्षा संकाय
टांटिया विश्वविद्यालय, श्री गंगानगर राजस्थान
email: 8890585331
Cell: drrekhasoni75@yahoo.com

श्री आसिफ अली भट्ट
अध्यापक,
उच्च शिक्षा विभाग, जम्मू व कश्मीर
ईमेल- asifali9622645@gmail.com
फ़ोन- 9622645730

श्री विशाल कुमार
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय,
रोहतक, हरियाणा
ई-मेल पता- vishalgoel009@gmail.com
संपर्क सूत्र- 9034024901

केंद्रीय हिंदी संस्थान
CENTRAL INSTITUTE OF HINDI
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
MINISTRY OF EDUCATION, GOVT. OF INDIA
हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा 282005 (भारत) HINDI SANSTHAN MARG, AGRA - 282005 (INDIA)

प्रो. सुनील बाबुराव कुलकर्णी, निदेशक
PROF. SUNIL BABURAO KULKARNI, DIRECTOR

दो शब्द

प्रथमत: कश्मीर की प्राचीन संस्कृति जो शारदा पीठ के नाम से पूरे विश्व में विख्यात है। उसे गत भविष्य में जलाए रखने हेतु तथा उस संस्कृति को पुन: संस्थापित एवं प्रकाश में लाने हेतु प्रारंभ हो रही 'विस्तता विमर्श' इस त्रैमासिक ई-पत्रिका के प्रवेशांक हेतु मैं केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा तथा केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली इन दोनों शिक्षा मंत्रालय से संबंधित संस्थाओं की ओर से हार्दिक बधाई देता हूँ। जिन उद्देश्यों से यह दोनों संस्थाएं सन् 1960 से कार्य कर रही हैं, उन्हीं उद्देश्यों के केंद्र में रखकर कश्मीर जैसे हिंदीतर भाषी क्षेत्र में हिंदी का प्रचार-प्रसार करने हेतु समर्पित इस पत्रिका का प्रारंभ न केवल प्रशंसनीय है, बल्कि आदर्श का द्योतक है।

यह जानकर भी अति प्रसन्नता हुई कि पत्रिका में अलग-अलग खंडों के माध्यम से विभिन्न विषयों एवं कार्यक्षेत्रों को समाहित करने का स्तुत्य प्रयास किया जा रहा है, जिनमें वैचारिक खंड / इतिहास / विरासत खंड / बदलता कश्मीर / साक्षात्कार खंड / विमर्श खंड / कविता खंड तथा वितस्ता खंड आदि या इत्यादि खंड महत्वपूर्ण हैं। आशा है कि वितस्ता खंड के माध्यम से वर्तमान में कश्मीर में जो आमूल-चूल परिवर्तन हो रहा है, देश और दुनिया की ओर देखने की कश्मीर की दृष्टि में जो परिवर्तन हो रहा है उसे स्वर मिले।

वर्तमान सदी में नई शिक्षा नीति के अंतर्गत प्रादेशिक भाषाओं को जो महत्व और बल प्रदान किया जा रहा है। ऐसे परिप्रेक्ष्य में पत्रिका का यह प्रयास मुझे अत्यंत महत्वपूर्ण लग रहा है। पुनश्च एक बार मैं पत्रिका के संपादक तथा संपादक मंडल से जुड़े हुए सभी सदस्य जन को हार्दिक बधाई देकर अपना आशीर्वचन प्रदान करता हूँ।

प्रो. सुनील बाबुराव कुलकर्णी
निदेशक

इस अंक में

सम्पादकीय- ऐसे समय में जब बुक नहीं फेसबुक पढ़ा जाता है

वैचारिक खंड

आधुनिकता की दौड़ में धर्म और संस्कृति से विमुख होते लोग **पूजा गुप्ता/7**

औद्योगिक विकास में गांधी के विचारों की आवश्यकता **डॉ. नरेश कुमार सिहाग/10**

डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर जी का समाज **डॉ. कमलेश कुमार थापक एवं योगेश स्वरुप ब्रह्मचारी/17**

इतिहास/विरासत खंड

भारतीय काव्यशास्त्रीय विमर्श की आधार भूमि "कश्मीर" **प्रो. विनोद तनेजा/21**

कश्मीर में स्थित बौद्ध धर्म स्मारक **डॉ. अमृता सिंह/28**

संस्कृति बनाम कश्मीरिय़त **डॉ. उमर/33**

भाषा विज्ञान की अवधारणा और रामविलास शर्मा **अब्दुल हफ़ीज़/36**

बदलता कश्मीर

तलाशी **फोज़िया शेख़/49**

साक्षात्कार खंड

मुलाक़ात श्री सतीश विमल के साथ **डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट/50**

विमर्श खंड

समय सरगम में वृद्धावस्था विमर्श **डॉ. शगुफ़्ता नियाज़/56**

मैं पायल उपन्यास में वर्णित किन्नर जीवन का आत्मसंघर्ष **विकास साव एवं राहुल महतो/64**

मानवीय संवेदनाओं का मार्मिक दस्तावेज़ 'मढ़ी का दीवा' उपन्यास **डॉ. सुशीला/76**

कहन का अलहदा अंदाज़ बनाता है डॉ. आरती की ग़ज़लों को ख़ास **डॉ. रमाकांत शर्मा/82**

इलाचंद्र जोशी की उपन्यास शैली **ऋषिकेश श्रीवास्तव/85**

काव्य खंड

कश्मीर की औरत — **आशमा कौल/93**

अतीत के झरोखे से — **महाराज कृष्ण भरत/97**

बदलता कश्मीर — **डॉ. मुक्ति शर्मा/99**

पुरुष कंजूस होते हैं — **डॉ. रंजना जायसवाल/100**

वितस्ता खंड

आशा,लालसा (कश्मीरी कविताएँ) — **मूल लेखक निसार आज़म**
अनुवादक- डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट/101

ऐसे समय में जब बुक नहीं फ़ेसबुक पढ़ा जाता है

पिछले कई वर्षों से मित्रों, संगियों, सामंतों से एक पत्रिका के प्रारंभ करने की बातें करता था, बातें ही रहीं। किसी ने सलाह दी आज के दौर में यह एक जोख़िम लेने के समान होगा। ठीक है, यदि पत्रिका को प्रारंभ करना जोख़िम है तो इसको स्वीकार किया जाना चाहिए। वैसे भी जोख़िम जीवन का एक अनिवार्य व्यापार है, संसार में यही कारोबार है। एक मुद्दत हुई परन्तु यह शुभ कार्य प्रारंभ नहीं कर पाया, सोचता ही रहा। ऐसे समय में जब बुक नहीं फेसबुक पढ़ा जाता है, तो क्या कोई पत्रिका पढ़ेगा अथवा कितने लोग पत्रिकाओं को नियमित पढ़ते हैं या कितने लोग पत्रिका या पुस्तकें पढ़ने में रूचि रखते हैं? जो भी हो यदि फ़ेसबुक पढ़ने या फ़ेसबुक पर समय बिताने वाले बहुत अधिक हैं तो पुस्तकें पढ़ने वाले या पुस्तकों की ख़ुशबू परखने वाले भी कम नहीं हैं।

निश्चित ही लोग साहित्य के महत्त्व को न केवल समझते बल्कि उसके मर्म को भी जानते हैं। कुछ तो इसे जीते, पहनते भी हैं। आज सोशल मीडिया के दौर का एक संतोष यह भी है कि युवा पीढ़ी साहित्य में अधिक रूचि लेने लगी है। इस बात की पुष्टि मुझे तब हुई जब *वितस्ता विमर्श* के प्रवेशांक के लिए रचनाएँ आमंत्रित की गईं तो लेखकों, कवियों, रचनाकारों ने सहर्ष अपनी रचनाएँ प्रेषित कीं। आश्चर्य तो तब हुआ जब मैंने दूसरे दिन ईमेल खोला तो करीब ३५ लोगों ने अपनी रचनाएँ भेजी थीं। मैंने तुरंत उन्हें धन्यवाद लिखा। रचनाएँ ईमेल पर आने का यह सिलसिला लगातार चलता रहा। रचनाएँ भेजने की अंतिम तिथि से पहले ही इस प्रवेशांक के लिए रचनाएँ बराबर हुईं।

अहिंदी भाषा-भाषी क्षेत्र श्रीनगर कश्मीर से भले ही इस पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ है परन्तु इसका सम्पूर्ण श्रेय उन लेखकों, रचनाकारों व

शोधार्थियों को जाता है जिन्होंने अपनी रचनाएँ व शोध-आलेख प्रेषित किए हैं। मैं गुरु जनों का विशेष आभारी हूँ कि उनके प्रोत्साहन ने मुझे इस पत्रिका को प्रारंभ करने के लिए प्रेरित किया। परामर्श मंडल व संपादक मंडल के सभी सदस्यों का भी हार्दिक आभार कि उन्होंने समय-समय पर सहयोग दिया है।

वितस्ता विमर्श हिंदी साहित्य जगत् को भेंट करते हुए अपार प्रसन्नता हो रही है। इस आशा के साथ कि यह पत्रिका हिंदी पाठक वर्ग के लिए लाभप्रद सिद्ध होगी। इस पत्रिका का प्रकाशन एक सामूहिक प्रयास है; रचनाकारों, शोधार्थियों के सहयोग से ही इस पत्रिका को बेहतर बनाया जा सकता है। आपका सहयोग सदैव अपेक्षित है।

सम्पादक

डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट

श्रीनगर, जम्मू व कश्मीर

वैचारिक खंड

आधुनिकता की दौड़ में धर्म और संस्कृति से विमुख होते लोग

-पूजा गुप्ता

आज की युवा पीढ़ी धर्म से बिल्कुल विमुख होती जा रही है। शिक्षा के क्षेत्र में तो बहुत आगे बढ़ी है, पर संस्कारों के नाम पर बिल्कुल भी नहीं। केवल भौतिकतावाद और पैसे के पीछे दौड़ रही है, ऐसा क्यों? फटे कपड़े पहनना हमारी संस्कृति का हिस्सा नहीं है। हमें बचपन से ही सादगी व सरलता तथा सहजता से जीवनयापन करना सिखाया जाता रहा है, लेकिन वर्तमान परिदृश्य में केवल एक घंटे के लिए तीस हज़ार से लेकर एक लाख तक के लहंगे पहने जाते हैं। क्या यह आधुनिकता की अंधी दौड़ नहीं, तो और क्या है? कहा जाता है कि कोई भी पेड़ तब तक ही आगे बढ़ पाता है जब तक वह अपनी जड़ों से जुड़ा रहता है। जब वह जड़ों से विमुख हो जाता है तो उसका पतन तय हो जाता है।

समाज में व्यक्ति की वह जड़ें संस्कृति है, जिससे जुड़ा रहना व्यक्ति के लिए आवश्यक होता है। संस्कृति से कटा हुआ व्यक्ति कटी डोर की पतंग की भांति होता है जो उड़ तो रहा होता है लेकिन मंज़िल व रास्ता तय नहीं होता, न ही पता होता है कि वह कटी हुई पतंग कहाँ जाएगी। वैसा ही हाल समाज में जब कोई व्यक्ति अपनी सांस्कृतिक जड़ों से कट जाता है तो अपना आधार खो देता है। वर्तमान परिदृश्य में समाज को देखें तो देखने को मिल जाता है कि युवा पीढ़ी अपनी संस्कृति को दिन-प्रतिदिन पीछे छोड़कर आधुनिकता की अंधी दौड़ में दौड़ी जा रही है। संस्कृति-संस्कार समाज के ऐसे अभिन्न अंग हैं जिनसे समाज तय होता है। कहा जाता है कि जिस प्रकार की संस्कृति व संस्कार किसी समाज में प्रचलित होंगे, उसी तरह का समाज निर्माण होगा। हमारे देश-प्रदेश की संस्कृति व संस्कार पूरे वैश्विक मंच पर आदर्श स्थान पर रहे हैं। भारतीय जीवन शैली को पूरे विश्व में सबसे श्रेष्ठ व सभ्य शैली माना जाता रहा है। लेकिन समय के चक्र व पाश्चात्य प्रभाव ने कई संस्कृतियों के संस्कारों को उधेड़ कर रख दिया। वर्तमान परिदृश्य में बात अगर व्यक्ति की सामान्य जीवन शैली की करें तो आज अधिकांश लोग संस्कृति व संस्कारों के साथ जीने को पिछड़ापन मानते हैं, लेकिन चिंता का विषय यह है कि कहीं यह इस सोच को मानने वाले लोगों का ही वैचारिक पिछड़ापन तो नहीं जो उन्हें अपनी संस्कृति के साथ जीने में पिछड़ा हुआ महसूस होता

है। पिछड़े हुए तो उन्हें कहा जा सकता है जो अपनी संस्कृति व संस्कारों से पिछड़कर पाश्चात्यकरण कर चुके हैं।

भारत की संस्कृति व सभ्यता में प्राचीन समय से ही प्रत्येक कार्य के पीछे तर्क व वैज्ञानिक आधार रहा है। हमारी संस्कृति पूरे विश्व को जीवन मार्ग पर चलना सिखाती थी, तभी भारत को विश्व गुरु जैसी उपमाओं से अलंकृत किया जाता रहा है। लेकिन देश-प्रदेश के वर्तमान परिदृश्य का आंकलन करें तो आज समाज का अधिकांश वर्ग आधुनिकता की अंधी दौड़ में अपनी संस्कृति व संस्कारों को भुला चुका है। लोग माता-पिता को सम्मान देने की बजाय आज उन्हें वृद्धाश्रमों में जीवन काटने के लिए भेज रहे हैं। जिन माता-पिता ने बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के लिए अपना जीवन कष्टों में काटा, आज उन्हें घरों से ही निकाला जा रहा है। जहाँ विवाह-शादियों में बेटियों को डोलियों में विदा किया जाता था, आज वहाँ स्टेज पर सारी औपचारिकताएँ निभा दी जाती हैं। युवा खेलों को छोड़कर नशे को ही खेल समझ बैठे हैं। अपनी ताकत गलत कार्यों में लगाकर युवा पीढ़ी संस्कृति की जड़ों से कट चुकी है। आज के युवा गुरुओं को सम्मान देने की बजाय कई बार तो सामने आने से रास्ते बदल लिया करते हैं। पहले गुरु-शिष्य के संबंधों की महिमा लोगों की जुबां पर होती थी। जहाँ त्यौहारों व रीति-रिवाजों को सामूहिकता व अपनेपन की भावना तथा संस्कृति के एक हिस्से के रूप में मनाया जाता था, समाज में हर्षोल्लास व भातृभाव का समन्वय स्थापित रहता था, आज उन्हीं त्यौहारों पर सोशल मीडिया में बधाई के फोटो डालकर व इन अवसरों पर नशा करने का प्रचलन समाज में बढ़ गया है। मानो आज के युवाओं को नशे करने के लिए अवसर चाहिए। साथ में ही त्यौहारों के अवसर पर जहाँ लोक संगीत व लोक संस्कृति का परिचय देखने को मिलता था वहाँ आज खुली आवाज़ में डीजे लगाकर इन त्यौहारों की औपचारिकताएँ पूरी होती नज़र आती हैं।

मानो समाज संस्कृति व संस्कारों से कट कर केवल बिना डोरी की पतंग की तरह औपचारिकतावादी बन कर रह गया है। हमारी संस्कृति में सहयोग का बड़ा महत्व था। सभी एक-दूसरे व्यक्ति को सहयोग दिया करते थे। हर सुख-दुख में साथ खड़े रहने की भावना देखने को मिलती थी, लेकिन आज समाज व लोग व्यक्तिवादी होते जा रहे हैं। केवल अपने में ही समाज को समझते हैं। भारत में आधुनिकता के नाम पर अपनी संस्कृति की जड़ से ही कट गए हैं। अच्छी से अच्छी शिक्षा प्राप्त किए लोग समाज में

अमानवीय कृत्यों में संलिप्त पाए जाते हैं जिससे स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा कितनी भी हासिल कर ली जाए, वो शिक्षा अगर आपके व्यवहार में न उतरे, तो उस शिक्षा का कोई औचित्य नहीं रह जाता है। कई दफा लोग साक्षर होने के दावा करते हैं, मगर बात करने के ढंग से वो अक्सर अपना वास्तविक परिचय दे दिया करते हैं, जिससे ऐसी शिक्षा का कोई औचित्य नहीं रह जाता है। इससे अच्छा तो गाँवों के अशिक्षित लोग अच्छी तहज़ीब व व्यवहार में सादगी तथा विषयों पर प्रखर पकड़ रखने वाले हमारे बुज़ुर्ग बेहतर हैं जिन्होंने भले ही स्कूलों में जाकर कभी किताबें नहीं पढ़ी हों, लेकिन समाज व लोगों को पढ़कर एक आदर्श जीवन शैली को अपनाए हुए हैं, अपनी संस्कृति को संजोए हुए हैं। आधुनिक होने का दावा करने वाले महामनुष्य न जाने किन बातों में आधुनिक हैं, अगर उन्हें मानवीय व्यवहार व सम्मान न करना आए। ऐसी आधुनिकता की अंधी दौड़ में लडख़ड़ाने से बेहतर है सामान्य जीवन व्यतीत करना।

आधुनिक होने की बातें की जाती हैं, मगर ये आधुनिक और स्मार्ट व्यक्ति नहीं बल्कि इनके महंगे-महंगे स्मार्टफोन हैं जिनसे लोगों को लगता है कि वे भी इन मोबाइलों की तरह स्मार्ट हैं, लेकिन यह सबसे बड़ा भ्रम है। आज का मनुष्य इतना निर्भर प्रवृत्ति में लीन हो गया है कि केवल सब कुछ आर्टिफिशियल चाहिए, स्वयं कुछ भी नहीं करना है। वो कहा जाता है न कि आज के मनुष्य सोशल मीडिया में तो सोशल होना चाहते हैं, मगर सामाजिक नहीं बनना चाहते। केवल नाम से आधुनिकतावादी कहलाना चाहते हैं। यह आधुनिकतावादी होने का भ्रम लोगों को अपने मस्तिष्क से निकालकर व्यावहारिक जीवन में चिंतन करके अपनी जड़ों से जुड़कर अपनी संस्कृति व सभ्यता को जानना चाहिए, तभी आधुनिकतावादी कहलाने का कोई औचित्य रह पाता है, अन्यथा मानव इतना अधिक व्यक्तिवादी हो रहा है कि उसे कोई फर्क नहीं पड़ता कि साथ वाले घर में रह रहे व्यक्ति को क्या समस्या है?

धर्म के प्रति जागरुक होना ज़रूरी है सत्य एक जगह दुबका बैठा हुआ है। सब अपने-अपने धर्म के अनुसार कार्य करें लेकिन दूसरों को अपने धर्म के साथ जीने दीजिए। धर्मांतरण की आग में भोले-भाले इंसान को बलि का बकरा न बनाए।

पूजा गुप्ता
मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश) मोबाइल फोन – 7007224126

औद्योगिक विकास में गांधी के विचारों की आवश्यकता

डॉ. नरेश कुमार सिहाग

शोध सारांश-

सामाजिक परिवेश में हम एक महात्मा को पाते हैं, जिन्होंने न केवल शताब्दियों पुराने विदेशी शासन के जुए के नीचे कराहते हुए अपने देश को मुक्त करवाया अपितु पीड़ित मानवता को एक नया सन्देश भी दिया और मानव-इतिहास के आदिकाल से मनुष्य को पीड़ित करने वाली मुझे पुरानी समस्या के लिए समाधान के लिए अनुपम मार्ग भी दिखाया। महात्मा गांधी को अर्थ शास्त्री नहीं कहा जा सकता तथापि आर्थिक क्रिया-कलाप उनके बहु विध कार्यों को सारगर्म है। उन्होंने आर्थिक प्रबन्ध पढ़कर अद्भुत निष्कर्ष निकाले थे। उन्होनें स्वयं कहा है ''मैं अर्थ शास्त्री नहीं हूँ किन्तु मैंने ऐसे शोध प्रबन्ध पढ़े हैं जिनके अनुसार अपने लिए आवश्यक समस्त पैदावार उत्पन्न कर सकता है। समाज दार्शनिक के रूप में गांधी जी की दिलचस्पी ऐसे आर्थिक ढाँचे की अवधारणा में थी, जिसमें उनके आदर्श की पूर्ति संभव हो सके।

मुख्य रूप- महात्मा-भद्र पुरूष, पीड़ित-शोषित, आर्थिक-स्मर्धी, शास्त्री-विद्वान

महात्मा गांधी जी वह महामानव थे जिन्होंने तीस सरोजु जनता को क्रांतिकारी बनाकर न केवल देश को आज़ाद करवाया बल्कि मनुष्य मात्र के सर्वांगीण विकास के लिए अन्तिम समय तक कार्य किया। यंग इण्डिया महात्मा गांधी जी के लिए लिखता है- गांधी जी का उद्देश्य समाज के किसी विशेष अंग का पुनर्गठन न होकर मानव के समस्त अस्तित्व का पुननिर्माण था। वे एक सुधारक थे। सामाजिक क्रांतिकारी चिन्तकों की भांति जीवन की समस्याओं के प्रति उनका भी एक विशिष्ट उपागम था।[2] मानव इतिहास में अन्य युगों से कहीं अधिक आजकल आर्थिक व्यवस्था हमारी अधिकांश गतिविधि को परिवोष्टत करती है। वर्तमान में हम ऐसे संसार में रहते हैं जिस पर आर्थिक शक्तियां एवं आर्थिक विचार हावी है। आर्थिक व्यवस्था ही इतिहास की धारा को मोड़ने वाला प्रमुख कारण रही है। प्रो. मार्शल ने कहा है- धार्मिक आदर्श को छोड़कर अन्य किसी भी

प्रभाव से अधिक अपने दैनिक कार्य द्वारा एवं उससे प्राप्त होने वाले भौतिक साधनों द्वारा मानव चरित्र गठित होता रहा है। विश्व इतिहास के निर्माण के दो प्रधान अभिकरण रहे हैं धर्म एवं आर्थिक व्यवस्था।[3] हम आर्थिक व्यवस्था का महत्व दूसरी प्रकार से भी प्रतिपादित कर सकते हैं। जैसे मनुष्य की आत्मा हो सकती है किन्तु शरीर तो उसका है ही। शरीर की कुछ भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति होनी ही चाहिए। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति उसे कुछ साधन प्रदान करती है। ऐसे कुछ नियम अवश्य होने चाहिए जिनसे ये क्रिया-कलाप शासित होते हों। ये नियम ही आर्थिक सिद्धान्त की रचना करते हैं।

महात्मा गांधी जी ने सदा स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर बल दिया। वह स्वयं भी हाथ से बुने वस्त्र ही अपने शरीर पर धारण करते थे। यंग इंडिया में गांधी जी लिखते हैं- खादी-चेतना का अर्थ है पृथ्वी के प्रत्येक मानव के प्रति बन्धुत्व भाव। इसका अर्थ है ऐसी प्रत्येक वस्तु का परित्याग जिनसे हमारे साथियों को क्षति पहुँच सकती है।[4] इसी प्रकार से हरिजन अखबार में गांधी जी लिखते हैं- खादी मानवीय मूल्यों का प्रतिनिधित्व करती है। मिल का वस्त्र अधिक धात्विक मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है।[5]

बहुत आलोचक यह तर्क दे सकते हैं कि गांधी जी का कथन पुराने अर्थ शास्त्र पर लागू होता है, जिसे धन विज्ञान माना जाता था जबकि आजकल का अर्थशास्त्र धन से अधिक मानव का विचार करता है। आधुनिक अर्थशास्त्र के जनक मार्शल के शब्दों में - आर्थिक नियम एवं तर्क उस सामग्री के एक अंश भर हैं जिसका उपयोग सचेत भाव से एवं सामान्य बोध के स्तर पर व्यावहारिक समस्याओं का समाधान करने के लिए एवं ऐसे नियमों की रचना के लिए किया जाता है जो जीवन का पथ-प्रदर्शन कर सके।[6] महात्मा गांधी जी कहते हैं- माँग एवं पूर्ति के सिद्धांत को हम किसी विज्ञान का आधार नहीं बना सकते। आधुनिक अर्थ शास्त्रियों द्वारा निर्मित सर्वाधिक अमानवीय सिद्धान्त वाक्यों में से यह एक है।[7]

महात्मा गांधी अर्थ शास्त्री के रूप में:-

महात्मा गांधी जी ने अपनी धार्मिक प्रवृत्ति के बारे में कहा है- सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने के समय से ही मेरे कहे प्रत्येक शब्द एवं मेरे किये प्रत्येक कार्य के पीछे धार्मिक चेतना और गहरी धार्मिक प्रेरणा रही है।[8] आगे महात्मा गांधी जी कहते हैं- आज मानवीय क्रिया-कलाप का पूरा सप्तक मिलकर एक अविच्छेद्य समग्र की रचना करता है एवं सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं विशुद्ध धार्मिक कार्य को एक-दूसरे से बिल्कुल पृथक नहीं रखा जा सकता।[9] गांधी जी ने कुछ सिद्धांत बनाये जिन पर आर्थिक संगठन को आधारित होना चाहिए। गांधी जी कभी-कभी आर्थिक महत्व पर बहुत ज़ोर देते थे। उन्होंने अन्य क्षेत्रों की तरह इस क्षेत्र में भी कोई प्रबंध नहीं लिखा एवं निश्चय ही उन्हें सुविदित अर्थ में अर्थशास्त्री नहीं कहा जा सकता तथापि आर्थिक क्रिया-कलाप उनके बहुविध कार्यों का सारगम है। गांधी जी ने आर्थिक प्रबन्ध पढ़कर अद्भुत निष्कर्ष निकाले थे। मिशनरी कान्फ्रेंस मद्रास में प्रदत्त अपने भाषण में गांधी जी कहते हैं- मैं अर्थशास्त्री नहीं हूँ किन्तु मैंने ऐसे शोध प्रबंध पढ़े हैं जिनके अनुसार अपने लिए आवश्यक समस्त पैदावार उत्पन्न कर इंग्लैण्ड सहज ही आत्मनिर्भर देश बन सकता है।[10]

गांधी जी अर्थनीति की विशेषताएँ :-

महात्मा गांधी जी भारत के नष्ट प्रायः उद्योगों के कारण क्षुब्ध थे। उन्हें इस बात का भी बहुत दुःख था कि लकाशायर तथा मानचेस्टर की मिलों में बना वस्त्र भारत में आयात किया जा रहा जिस पर ऊँची-ड्यूटी लगती है जो भारतवासियों से वसूली जाती है। गांधी जी का मत था कि जब तक विदेशी वस्त्रों का आयात बन्द नहीं होगा तब तक हमारा देश आत्मनिर्भर नहीं बन सकता। गांधी जी श्रम को महत्व देते थे इसीलिए अपने हाथ से बुने कपड़े की उन्नति को श्रमोध वस्त्र 'खादी' बनाया। खादी तथा अन्य लघु ग्रामोद्योगों से करोड़ों लोगों को काम मिलता है। यह एक सस्ता एवं सरल व्यवसाय है, जिसे देश के हर समुदाय का व्यक्ति आसानी से कर सकता है। वह अपनी आवश्यकताओं के साथ-साथ देश के अन्य व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति भी कर सकता है।[11] हमारे देश के किसान के पास खेती-बाड़ी के अतिरिक्त कोई और काम

नहीं है इसलिए वह खेती के छः महिनों को छोड़कर बाकि छः माह बेकार (बिना काम के) रहता है। खादी का काम कपास (नरमा) के बोने (बिजाई) करने से लेकर सूत बुनने तथा वस्त्र बनाने तक होता है। अगर किसान अपने परिवार सहित खादी बनाता है तो वह पूरे साल काम करते हुए बेकारी की समस्या को समाप्त कर सकता है तथा अपनी व देश की आय की वृद्धि कर सकता है। महात्मा गांधी की दृष्टि में 'खादी मानवीय मूल्यों का प्रतिनिधित्व कर सकता है और मिल के कपड़े धात्विक मूल्य का।[12] गांधी जी का मत है कि किसी व्यक्ति या राष्ट्र के नैतिक कल्याण को क्षति (नुकसान) पहुँचाने वाला अर्थशास्त्र अनैतिक है, अतएव पापपूर्ण है। अर्थशास्त्र एक देश को दूसरे देश को लूटने की अनुमति देता है, यह अनैतिक है। अर्थ नीति का एक सिद्धान्त है कि 'सबसे सस्ते बाज़ार से खरीदो और सबसे महंगे बाज़ार में बेच दो। गांधी का मत है कि यह सिद्धान्त सर्वाधिक अमानवीय सिद्धान्त है इसलिए खद्दर का अर्थशास्त्र साधारण अर्थशास्त्र के बिल्कुल भिन्न है। पिछला सिद्धान्त जो मानवीय तथ्यों की कुछ कद्र ही नहीं करता वहीं पहला (खादी का सिद्धान्त) मानवीय स्थितियों की चिन्ता करता है।[13] खादी चेतना का अर्थ है पृथ्वी के प्रत्येक मानव के प्रति बन्धुत्व भाव। इसका अर्थ है ऐसी प्रत्येक वस्तु का परित्याग जिनसे हमारे साथियों को क्षति पहुँच सकती है।[14]

जीवन निर्वाह और सुख-सुविधाएँ :-

प्रत्येक मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु है।[15] लुई फिशर ने कहा है 'रुको और बचो' मनुष्य वस्तुतः संतोष मे निहित है। जो असन्तुष्ट रहता है वह अपनी कामनाओं का गुलाम बन जाता है। महात्मा गांधी जी कहते हैं- मानव शरीर का एकमात्र उद्देश्य सेवा है, भोग कदापि नहीं। सुखी जीवन का रहस्य त्याग में है। त्याग ही जीचवन है। भोग का अर्थ तो मृत्यु है।[16] गांधी जी बिजली, जहाज़, उद्योग, यंत्र निर्माण आदि को जीवन के लिए उपयोगी मानते थे। वे इन सबके विरोधी नहीं थे। वे कहते थे हमें सचेत रहना होगा कि कहीं हम दूसरों की कीमत पर तो अपनी आवश्यकताएँ नहीं बढ़ा रहे। इसलिए हमें अपनी आवश्यकताएँ सीमित रखनी चाहिए तथा सदा यह प्रयोग करना चाहिए कि हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति अपनी स्वदेशी वस्तुओं से ही करे। गांधी जी जान गये थे कि भारत में गरीबी का मुख्य कारण कुटीर उद्योग का विनाश

है। हिन्द स्वराज के पृ. 148 वर्ष 1908 में गांधी जी लिखते हैं- मैनचेस्टर के कारण ही भारतीय हस्तशिल्प विलुप्त प्रायः हो गया। उनका निश्चित विश्वास था कि पुराने जमाने में भारतीय किसान अधिक सुखी थे क्योंकि अवकाश के छः महीनों में सहायक उद्योग का वे आश्रय ले सकते थे। महात्मा गांधी ने खोज की कि उस समय ऐसा प्रमुख सहायक उद्योग चर्खा हो सकता है, क्योंकि चर्खा से सूत कातकर हम वस्त्रों का निर्माण कर सकते हैं। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद इन वस्त्रों की बिक्री कर हम अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार कर सकते हैं। गांधी जी का चर्खा आंदोलन यंत्रों को उस अनन्य एवं शोषक स्थिति से विस्थापित करने और उनके उपयुक्त क्षेत्र में मर्यादित करने का संगठित प्रयास था। ग्रामोद्योग ऐसे किसी भी यंत्र का सोत्साह संरक्षण करेगा जो लोगों से उनका काम नहीं छीनता किन्तु जो व्यक्ति के लिए उपयोगी है, जो उसकी दक्षता में वृद्धि करता है और जिसका व्यवहार मनुष्य अपनी इच्छा से उसका गुलाम बने बिना कर सकता है।

मानव श्रम के स्थान पर यंत्रों का प्रतिस्थापन बहुधा श्रमिक वर्गों के हितों के लिए अत्यन्त हानिकर होता है। इसलिए गांधी जी ने स्वदेशी पर बहुत ज़्यादा ज़ोर दिया है। अपने देश में बनी हुई वस्तुएँ स्वदेशी होती हैं इनके प्रयोग से हम गरीबों की मदद कर सकते हैं। जिससे उनकी गरीबी दूर होगी और देश का पैसा देश में ही रहेगा। बड़े उद्योग धन्धे अधिकतर विदेशी लोगों के हैं। इनकी वस्तुओं के प्रयोग से इन्हें ही लाभ होगा हमें या हमारे भाइयों को नहीं इसलिए गांधी जी ने कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन दिया। आपने ग्रामोद्योग संघ की स्थापना की थी और निम्न कुटीर उद्योगों की उन्नति के लिए कार्य किया-

1. कागज़ बनाना
2. तेल निकालना
3. धान से चावल निकालना
4. ईख, खजूर तथा ताड़ से गुड़ बनाना
5. चमड़े की वस्तुएँ बनाना
6. मधु-मक्खी पालन
7. रस्सी बांटना
10. मुर्गी पालन
11. बढ़ई गिरी
12. लोहारी व सोनारी का कार्य
13. दियासलाई बनाना
14. मिट्टी के बर्तन बनाना
15. मिट्टी के खिलौने बनाना
16. ईंट बनाना

8. आटा पीसना
9. साबुन बनाना
17. खपरैल बनाना
18. काँच की वस्तुएँ बनाना

गांधी जी द्वारा स्थापित इस संघ ने मध्य देश में अनेक केन्द्र खोलकर कुटीर उद्योगों का विकास किया, आपकी प्रेरणा से अनेक स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग भारतवासियों ने प्रारम्भ किया जिस कारण बहुत से गरीब लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। वर्तमान समय में ही हम गांधी की अर्थ व्यवस्था के सिद्धांतों को अपनाकर स्वदेशी उद्योगों को बढ़ा सकते हैं जिससे देश का पैसा देश में रहेगा तथा देश की गरीबी भी दूर होगी। सभी को रोज़गार मिलेगा, देश का हुनर देश के काम आयेगा। गांधी जी के विचारों का पालन कर हम ग्रामोद्योग को पुर्नजीवन प्राप्त होगा। इससे भारतवासियों में देशभक्ति के भाव जगेंगे तथा देश की आर्थिक प्रगति को बल मिलेगा।

संदर्भ :-

1. प्रसाद, महादेव. *महात्मा गांधी का समाज दर्शन*, पृ. 203
2. *यंग इण्डिया*, 12 मई 1920
3. मार्शल, *प्रिन्सिपल ऑफ इकनॉमिक्स (खण्ड-1)*, पृ. 1
4. *यंग इण्डिया*, 22 सितम्बर 1927
5. *हरिजन*, 9 फरवरी 1934
6. प्रसाद, महादेव. *महात्मा गांधी का समाज दर्शन*, पृ. 207
7. वही, पृ. 210
8. वही, पृ. 202
9. *यंग इण्डिया, तृतीय खंड*, पृ. 350
10. 14 फरवरी 1916 को मिशनरी कान्फ्रेन्स मद्रास में प्रदत्त भाषण- ईकनॉमिक्स ऑफ खादी।
11. गांधी, मोहनदास करमचन्द. *रचनात्मक कार्यक्रम*, पृ. 16
12. *गांधीवादी योजना*, पृ. 42
13. *यंग इण्डिया*, 27 अक्टूबर 1921

14. प्रसाद, महादेव. *महात्मा गांधी का समाज दर्शन*, पृ. 207
15. सिहाग. नरेश, *शास्त्र मंथन*, पृ. 11
16. *हरिजन*, 24 फरवरी 1946

-डॉ. नरेश कुमार सिहाग,
विभागाध्यक्ष एवं शोध निर्देशक, हिन्दी
टांटिया विश्वविधालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान।
गुगन निवास, 26, पटेल नगर, भिवानी (हरियाणा)
मो. 9466532152

डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर जी का समाज

डॉ. कमलेश कुमार थापक

योगेश स्वरुप ब्रह्मचारी

सारांश- एक महान विचारक एवं भीमराव अम्बेडकरजी एक महान समाज सुधारक दलितों के मसीहा थे। बाबा साहेब का जन्म 14 अप्रैल 1891 को मध्यप्रदेश के इन्दौर ज़िले में महू के पास छावनी में हुआ था। बाबा साहब ने अपने जीवन पर्यन्त जातिवाद को खत्म करने व छुआछूत को समाप्त करने का प्रयास किया। उन्होंने जाति के आधार पर निम्न जाति के लोगों के साथ होने वाले भेद-भाव का विरोध किया एवं समाज में फैले छुआछूत के इस ज़हर को खत्म करने का प्रयास किया। बाबा साहब ने स्त्रियों की स्वतंत्रता पर भी अपना प्रयास किया और उनकी शिक्षा-दीक्षा पर भी बल दिया जिससे

पर खड़े होकर सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत कर स्त्रियाँ समाज में अपने पैरोंसके। बाबा साहेब ने धार्मिक आधार पर हो रहे भेद-भाव को मिटाने के लिये लोकसभा में हिन्दू कोड बिल को लाया । बाबा साहेब ने हमेशा अपने विचारों में शिक्षा, सामाजिक समानता एवं स्त्री शिक्षा में ज़ोर दिया।

मुख्य शब्द- बाबा साहेब, सामाजिक व्यवस्था, दलित, न्याय,भेदभाव, छुआछूत, धर्म, संविधान।

आलेख- बाबा साहेब का जीवन जिन भेद-भाव व सामाजिक विषमताओं को झेल कर व्यतीत हुआ वो उन सभी सामाजिक भेद-भाव को सहते हुये भी कभी झुके नहीं। अपने अध्ययन व परिश्रम के द्वारा अपने को उस मुकाम तक पहुंचाया जहाँ से वे दलितों एवं अछूतों को न्याय एवं उनका अधिकार दिला सके। बाबा साहेब ने हिन्दू समाज में फैली कुरीतियों का जमकर विरोध किया और अपना सम्पूर्ण जीवन समाज सेवा में लगा

दिया। बाबा साहेब का प्रथम आन्दोलन जो कि सन् 1920 ई. में हुआ, वह समाज सुधार से ही सम्बन्धित था। उन्होंने हज़ारों दलितों एवं अछूतों को साथ में लेकर "अत्यज्य संघ" नामक सामाजिक संगठन की स्थापना की थी। इस संघठन का काम गरीब एवं अनाथ बच्चों की सहायता करना था। बाबा साहेब के अनुसार-"समाज सेवा राजनीति से अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि समाज सेवा करने से व्यक्ति के चरित्र का निर्माण होता है।"

बाबा साहब गरीबी को एक सामाजिक बुराई मानते थे उनका कहना था कि गरीबी को खत्म करके ही समाज में समानता लाई जा सकती है। बाबा साहेब समाजवादी विचारधारा के संवाहक थे जिसमें आर्थिक पूंजी व विकास सभी वर्गों को प्राप्त हो न कि किसी विशेष व्यक्ति या वर्ग को। बाबा साहेब हिन्दु धर्म में व्याप्त वर्ण-व्यवस्था जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में विभाजित थी उसको अस्वीकार किया और उसका हमेशा विरोध किया। वह वर्ण-व्यवस्था को सामाजिक असमानता का आधार कहते थे। बाबा साहेब समाज में विद्यमान अस्पृश्यता एवं जातीय भेदभाव को खत्म करने के लिये हमेशा प्रयासरत रहे। जब भारत स्वतंत्र हुआ तो बाबा साहेब स्वतंत्र भारत के प्रथम कानून मंत्री बने। वह सभी को समान अधिकार देने के पक्ष में थे इसलिए वह हिन्दू कोड बिल लोकसभा में लाये,पर बिल राजनैतिक विरोधों के कारण पारित न हो सका। बाद में वह खण्डों-खण्डों में पारित हुआ। बाबा साहेब ने अपने विचारों में हमेशा धर्म-निरपेक्षता के विचारों को अपनाया। वह धर्म में आस्था तो रखते थे पर राज्य के धर्म-निरपेक्ष-स्वरुप पर ज़ोर देते थे। उनका मानना था कि राज्य व्यवस्था को सभी धर्मों का आदर व सम्मान करना चाहिये। वह व्यक्ति की धार्मिक स्वतंत्रता के पक्षधर थे।

बाबा साहेब ब्राह्मणवाद के कट्टर विरोधी थे। वह समाज में हो रहे भेद-भाव को ब्राह्मणवाद की ही देन मानते थे। वह मनुवाद के भी खिलाफ थे उनका मानना था कि

मनुस्मृति की वजह से ही शूद्रों पर अत्याचार होता है। बाबा साहेब सामाजिक समानता के पक्षधर थे। वह फ्रांसीसी दार्शनिक "रुसो" के सामाजिक, समानता, स्वतंत्रता व बंधुत्व के विचारों से बहुत प्रभावित थे। वह राजनीतिक समानता से पहले सामाजिक समानता की बात करते थे। बाबा साहेब ने दलितों के राजनीतिक अधिकारों की मांग करते हुये प्रथम गोलमेज़ सम्मेलन में इस बात पर ज़ोर दिया कि जिस तरह से मुस्लिम एवं ईसाईयों के लिये साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व दिया गया उसी प्रकार दलितों को भी अलग प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिये जिससे उनको ज़्यादा से ज़्यादा मौके मिले और उनका विकास हो। बाबा साहेब ने हिन्दु धर्म में फैली कुरीतियों को देखते हुए एवं सन् 1935 के येवला सम्मेलन में हिन्दुओं के अमानवीय अत्याचारों के विरुद्ध हिन्दु धर्म छोड़ने की घोषणा कर दी। कुछ सालों बाद अपने परिनिर्वाण के लगभग सात सप्ताह पहले 14 अक्टूबर 1956 को उन्होंने नागपुर में बौद्ध धर्म को अपना लिया। बाबा साहेब ने जातिगत भेद-भाव को खत्म करने के लिये अन्तर्जातीय विवाह को उपाय बताया। बाबा साहेब ने स्वयं सन् 1948 में एक ब्राह्मण महिला *'सरिता' कबीर* से विवाह कर समाजिक समानता को बल दिया। बाबा साहेब ने नारी शिक्षा, सम्पत्ति में महिला का पूर्ण अधिकार, महिलाओं के लिये तलाक का प्रावधान आदि सुधारों पर ज़ोर दिया। बाबा साहेब का सबसे बड़ा कार्य संविधान निर्माण में रहा। संविधान के द्वारा उन्होंने देश के हर वर्ग, नारी, श्रमिक, किसान आदि को कल्याणकारी सुरक्षा प्रदान की। बाबा साहेब को दलितों का उद्धारक कहकर कुछ लोग उनकी महानता को कम करने का प्रयास करते हैं, जबकि बाबा साहेब के कार्यों व प्रयासों से आज भी बहुत सारे लोग अपरिचित हैं। अतः बाबा साहब बहुत बड़े समाज सुधारक, कानूनविद, दलितों के हित चिन्तक एवं एक बड़े राजनेता थे जिनके माध्यम से समाज में बहुत बड़ा बदलाव आया। उनके सामाजिक विचारों की उपादेयता आज भी प्रासंगिक है। आज भी केन्द्र या राज्य

सरकारें कोई भी कल्याणकारी योजनाएँ सामाजिक सुधार के लिए लागू करती है तो उसका आधार कहीं न कहीं बाबा साहेब के सामाजिक विचार ही होते हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची -

1. पुजारी, विजय कुमार. *डॉ. अम्बेडकर- जीवन दर्शन*, गौतम बुक सेन्टर दिल्ली
2. कीर,धनंजय. *डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित*, पापुलर प्रकाशन
3. खान, मुमताज़ अली. *मानवाधिकार और दलित*, नई दिल्ली
4. शर्मा, के. एल. *जाति वर्ग और सामाजिक आन्दोलन*, जयपुर
5. सिन्हा, राकेश के. *गाँधी, अम्बेडकर और दलित*, जयपुर
6. जाटव, डी. आर. *भारत में सामाजिक न्याय*, जयपुर
7. सर्वेश, *अम्बेडकर के विचार*. समता साहित्य सदन, नई दिल्ली
8. मेहता, चेतन, *युगदृष्टा डॉ. भीमराव अम्बेडकर*, मलिक एंड कम्पनी, नई दिल्ली
9. लिमये, मधु. *बाबा साहब अम्बेडकर एक चिंतन*, आत्माराम एंड संस, दिल्ली
10. सागर, एस.एल. *डॉ. अम्बेडकर संक्षिप्त जीवन परिचय*, सागर प्रकाशन, मैनपुरी

नाम- योगेश स्वरूप ब्रह्मचारी (शोध छात्र संस्कृत, महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय)

पता- स्वर्गाश्रम पीलीकोठी चित्रकूट सतना मध्य प्रदेश (पिन कोड- 485334)

मोबाइल नंबर- 7905555940,

email- yswaroop10@gmail.com

डॉ. कमलेश कुमार थापक* योगेश स्वरुप ब्रह्मचारी **

*शोध निर्देशक (एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभागाध्यक्ष, महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय सतना मध्य प्रदेश)

** शोध छात्र (संस्कृत विभाग, कला संकाय, महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय)

इतिहास/विरासत खंड

भारतीय काव्यशास्त्रीय विमर्श की आधार भूमि "कश्मीर"

प्रो. विनोद तनेजा

भारत के रम्य क्षेत्रों में वैश्विक स्तर अपनी रम्यता से मानवीय भावनाओं को मोहित करने में समर्थ क्षेत्र "कश्मीर सिर्फ़ एक जगह नहीं बल्कि एक भावना है जिसे हर भावुक व्यक्ति अनुभव करना चाहता है"। इसी अनुभूति को मुग़लिया सल्तनत के समय "गर फ़िरदौस बर रूये ज़मी अस्त, हमी अस्तो,हमी अस्तो हमी अस्त, कहा गया। इसकी ख़ूबसूरती को लेकर कहा गया है -

"पहाड़ों के जिस्मों पे बर्फ़ों की चादर
चिनारों के पत्तों पे शबनम के बिस्तर,
हसीं वादियों में महकती है केसर
कहीं झिलमिलाते हैं झीलों के ज़ेवर
है कश्मीर धरती पे जन्नत का मंज़र।

ऐसा अद्भुत क्षेत्र प्राकृतिक सौंदर्य के साथ ही मानवीय चिन्तन के क्षेत्र में भी भारत ही नहीं अपितु वैश्विक स्तर पर अपनी परंपराओं के लिए अपनी अलग ही पहचान रखता है- "Kashmir has always been more than a mere place. It has the quality of an experience, or a state of mind or perhaps an ideal". (Jan Morris)

अपनी प्राकृतिक रम्यता से वैश्विक जनमानस को आकर्षित करने में समर्थ कश्मीर की यह धरती विभिन्न क्षेत्रों में मानवीय चिन्तन परंपरा की भी साक्षी रही है। यहाँ मानवीय कल्याण भावना से पूरित बौद्ध, शैव तथा सूफ़ी मान्यताओं के वैचारिक चिन्तन की भी विश्व विश्रुत परंपरा रही है। यहाँ के बौद्ध मतानुयायी आचार्य गुणवर्मन तथा आचार्य नागसेन के सैद्धान्तिक विवेचन से लाभान्वित हुए, शैव उपासक आचार्य उत्पल देव और आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा प्रतिपादित त्रिकाशैववाद के सिद्धांतों को कभी भूल

नहीं सकते। यहाँ का प्रत्यभिज्ञान शैव दर्शन परवर्ती शैवोपासकों के लिए जो मार्ग दिखा गया वो एक इस क्षेत्र का अद्भुत ज्ञान रूप है। कश्मीर की ऋषि परंपरा मध्यकालीन मानवीय चेतना के लिए एक वरदान है। अलमदार - ए- कश्मीर शेख़ नूर - उद - दीन नूरानी उर्फ़ नुन्द ऋषि के सैद्धान्तिक चिन्तन को कभी भुलाया नहीं जा सकता। उन्होंने जिस परंपरा की स्थापना की, इंसानियत के लिए जो रास्ता रोशन किया उस पर चलने वाले ही ज़िन्दगी को सही तरीके से जी सकते हैं। कश्मीर के ऋषि सिलसिले के साथ ही यहाँ की सूफ़ी साधना का भी विशेष योगदान यहाँ की मानवीय चिन्तन धारा में विशिष्ट स्थान रहा है। जनाब शाह गफूर, शम्स फ़कीर जैसे कितने ही सूफ़ी साधकों के चिन्तन ने यहाँ मानवता का पाठ जनमानस को समझाते हुए सही राह पर चलने की नसीहत दी है।

यहाँ की चिन्तन परंपरा में आयुर्वेद क्षेत्र में आचार्य लगध, आचार्य चरक, आचार्य जैज्जट, आचार्य तिसत आदि के उल्लेखनीय योगदान की चर्चा परवर्ती काल में खूब हुई है। गणित के क्षेत्र में आचार्य वटेश्वर तथा तर्कशास्त्र के क्षेत्र में आचार्य जयन्त भट्ट की चर्चा विद्वतमंडली में प्रायः की जाती रही है। ऐतिहासिक दृष्टि से आचार्य चन्द्रदेव द्वारा संकलित "नीलमतपुराण" तथा आचार्य कल्हण कृत "राजतरङ्गिनी" से तो सभी परिचित ही हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में राजकवि विल्हण कृत "विक्रमांकदेवचरित" भी उल्लेखनीय रचना है।

प्राकृतिक रम्यता और दार्शनिक वैविध्य के साथ ही साहित्यिक/अदबी क्षेत्र में भी चिन्तन की नई दिशाओं की खोज कश्मीर की विशिष्टता रही है।

साहित्य जनसमूह के हृदय के विकास के रूप में मानवीय भावोन्मेष का विचारात्मक रचनाओं के रूप में मान्य है। वैचारिक दृष्टि से आचार्य राजशेखर का कथन शब्दार्थ योर्यथावात्सहभावेत विद्या साहित्य विद्या, साहित्य के रूप को स्पष्ट कर देता है। यह रूप दृश्य और श्रव्य के अन्तर्गत काव्य, कथा, नाट्य आदि के विविध पक्षों के साथ भावक समाज के लिए भावुक सुधिजनो द्वारा रचित होता है। इस वैविध्य पक्षीय विधा के सैद्धान्तिक पक्ष का निर्धारण करने वाली नियमावली को काव्यशास्त्रीय पक्ष के रूप में जाना जाता है। काव्य या साहित्य का मूल्यांकन और परख करने वाला शास्त्र (विद्या)

काव्यशास्त्र कहलाता है। इस शब्द (काव्यशास्त्र) की अवधारणा का विकास संस्कृत साहित्य की सुदीर्घ चिन्तन परम्परा से अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। संस्कृत में साहित्य को काव्य तथा शास्त्र इन दो पक्षों में बांटा गया है इहं हि वांग्मयमुभयथा शास्त्रं, काव्यं च । इसी संदर्भ में आगे कहा गया है कि 'काव्य के अनुशीलन के लिए शास्त्र आवश्यक है'। आचार्य राजशेखर ने इसे और भी स्पष्ट करते हुए माना है कि ' जैसे दीपक के प्रकाश के बिना पदार्थों का ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं हो सकता, उसी प्रकार शास्त्र ज्ञान के बिना काव्य-ज्ञान असंभव है' । आचार्य के इस दीप की स्नेह सिक्त बाती की लौ कश्मीर में एक लम्बे समय तक जनजागृति को ज्ञान क्षेत्र से रुबरु कराती रही।

आचार्य राजशेखर द्वारा विवेचित यह शास्त्रज्ञान "काव्य/ साहित्य का मूल्यांकन या उसके सौन्दर्य की परख करने वाली इस विधा को ही काव्यशास्त्र कहा जाता है"। काव्यशास्त्र को मनीषियों द्वारा अलंकारशास्त्र, साहित्यशास्त्र, साहित्य विद्या, क्रियाकल्प आदि अभिधान समय-समय पर दिए गए पर प्रचलन में काव्यशास्त्र अधिक रहा। संस्कृत साहित्य में शुरू में भले ही काव्यालंकार के रूप में जाना गया, कालांतर में इससे अलंकारशास्त्र अभिधान प्रचलित हुआ। ग्यारहवीं सदी में आचार्य भोज कृत सरस्वतीकंठाभरण में इसके लिए "काव्यशास्त्र" अभिधान प्रयुक्त हुआ:-

काव्यं शास्त्रेतिहासौ च काव्यशास्त्रं तथैव च।
काव्येतिहास: शास्त्रेतिहास्तदपि षड्विधम्।।

इस प्रकार समय की धारा के साथ चलते साहित्य के सौन्दर्य को परखने वाली यह विधा विद्वत् जनों में अपनी पैठ बनाती रही। अपने मूल रूप को सहेजते हुए शास्त्र ज्ञान की यह दीप लौ युगानुरूप परिस्थितियों के साथ ज्ञान के कथ्य और शिल्प के परिवर्तन के साथ शास्त्र की सिद्धांत लौ में भी परिवर्तन होता रहा है।

काव्यशास्त्र के सहस्राब्दियों के इतिहास में इस क्षेत्र की चिन्तक मंडली ने समय की धारा के साथ विशेष दृष्टि से साहित्यिक सौन्दर्य की परख के विभिन्न पक्षों की प्रमुखता के आधार पर सैद्धान्तिक सिद्धान्तों को आधार बनाया जिन्हें काव्यशास्त्रीय संप्रदायों के रूप में मान्यता दी गई। परंपरा से रस, अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति तथा

औचित्य संप्रदायों को ही मनीषी समाज ने अध्ययन का आधार बनाया। हालांकि अनुमतिवाद तथा चमत्कारवाद आदि अन्य संप्रदायों का भी उल्लेख ग्रन्थों में मिलता है।

मनीषी मंडल द्वारा स्वीकृत रसादि संप्रदायों को ही आधार मानते हुए परस्पर विमर्श का आधार बनाया गया। सर्वप्रथम आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में विवेचित रस के विविध पक्ष विमर्श का आधार बने और यह विमर्श कश्मीर की प्राकृतिक रम्य भूमि पर ही शुरू हुआ। आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में रस का विवेचन करते हुए जो विभावानुभावसंचारी संयोगाद्रसनिष्पति कहा, उसके संयोग और निष्पत्ति को लेकर जो चर्चा जिन विद्वानों ने की वे सभी कश्मीर के ही थे। इस चर्चा में नौवीं तथा दसवीं सदी के आचार्य भट्ट लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक तथा अभिनवगुप्त ने विशेष योगदान दिया। इन सभी का सम्बन्ध कश्मीर के सामयिक राजदरबारों से था। इनमें से पहले तीनों आचार्यों के अभिमतों का उल्लेख परवर्ती मनीषियों ने किया है, उनकी रचनाएँ उपलब्ध नहीं। आचार्य अभिनवगुप्त की रसशास्त्र संबंधित अभिनवभारती उपलब्ध होती है। रस निष्पत्ति संबंधित चारों मनीषियों के सिद्धांत क्रमशः मीमांसा, न्याय, सांख्य तथा शैव दर्शन के वैचारिक पक्षों पर आधारित हैं। आचार्य भट्टनायक ने रस की सैद्धांतिक व्याख्या करते हुए साधारणीकरण को अधिक महत्वपूर्ण माना।

रस के साथ ही काव्यशास्त्र के इतिहास में अलंकार सम्प्रदाय की चर्चा का स्रोत भी कश्मीर के सुरम्य क्षेत्र की ही देन है। आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र के बाद भारतीय काव्यशास्त्र में आचार्य भामह का नाम आता है। आचार्य का समय ३०० ईस्वी से ६०० ईस्वी के मध्य माना जाता है। आपका काव्यशास्त्र से संबंधित काव्यालंकार ग्रंथ मिलता है। आपने शब्दार्थौ सहितम् काव्यम् काव्य परिभाषा देते हुए इस शास्त्र ज्ञान के क्षेत्र में अलंकार को प्रमुख माना। यद्यपि आचार्य भामह ने अपने को अलंकार का पोषक मानते हुए इस परम्परा के पूर्ववर्ती आचार्यों का संकेत दिया है, पर प्रामाणिक रूप से आपका ग्रन्थ ही इस क्षेत्र का प्रथम उपलब्ध ग्रन्थ है।

आचार्य भामह के अतिरिक्त आचार्य उद्भट, आचार्य रुद्रट, आचार्य राजानक रुय्यक, आचार्य शोभाकर मिश्र तथा आचार्य वल्लभ देव ने भी भारतीय काव्यशास्त्र के अलंकार सम्प्रदाय की चिन्तन परम्परा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इनका समय भी छठी शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक रहा। भारतीय काव्यशास्त्र के रस तथा अलंकार संप्रदायों के अतिरिक्त रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति तथा औचित्य संप्रदायों के स्रोत तथा तत्संबंधित विमर्श भी इसी क्षेत्र की देन हैं।

रीति संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन ने काव्यालंकारसूत्र में रीति को काव्य का आत्म विधायक तत्व मानकर उसकी विशिष्ट सत्ता का आख्यान किया। आपने रीतिरात्माकाव्यस्य कहते हुए स्पष्ट किया कि विशिष्ट पदरचना रीति:। आचार्य ने काव्य गुणों के साथ रीति के घनिष्ठ संबंध की चर्चा करते हुए गुण को काव्य का शोभाकारक कर्म माना। आचार्य ने वैदर्भी, गौड़ी तथा पांचाली काव्य रीतियों का विवेचन किया। रीति चर्चा में कश्मीर के आचार्य रुद्रट ने भी रीति विमर्श में लाटीया रीति की चर्चा की।

भारतीय काव्यशास्त्र की चिन्तन परंपरा में वैयाकरणों के स्फोट सिद्धांत से प्रभावित आचार्य आनन्दवर्धन के ध्वनि सिद्धांत का स्रोत भी कश्मीर के मनीषी वर्ग में ही मिलता है। कश्मीर नरेश अवन्ति वर्मा के सभासद आचार्य आनन्दवर्धन नौवीं सदी में पूर्ववर्ती आचार्यों के चिन्तन से शब्द और अर्थविज्ञान के पक्ष के महत्व को स्वीकार करते हुए ध्वन्यालोक में ध्वनि को काव्य का मूल स्वीकार करते हुए स्पष्ट किया शब्दार्थ शरीर तावत् काव्यम् ।

आचार्य आनन्दवर्धन के ध्वनि सिद्धांत पर सामयिक और परवर्ती कश्मीर के ही आचार्यों अभिनवगुप्त, मम्मट, मुकुल भट्ट तथा रुय्यक ने वैचारिक विमर्श किया। राजा अवन्ति वर्मा के समय में आचार्य कल्लटभट्ट के पुत्र आचार्य मुकुल भट्ट ने अभिधा और लक्षणा शब्दशक्ति की व्याख्या विशेष रूप से की।कश्मीर के अतिरिक्त अन्यत्र भी ध्वनि मनीषी समाज में चर्चा का विषय रहा।

काव्यशास्त्रीय चिन्तन परंपरा में कश्मीर के ही आचार्य कुन्तक की वैचारिक धारा ध्वनि सिद्धांत की आलोचना करते हुए वक्रोक्ति सिद्धांत का प्रतिपादन किया।

कश्मीर के ही एक अन्य मनीषी महिमभट्ट ने आचार्य के काव्य संबंधित वैचारिकता का विरोध भी किया।

भारतीय काव्यशास्त्र में उल्लेखनीय योगदान देने वाले कश्मीर क्षेत्र के आचार्य अभिनवगुप्त के शिष्य आचार्य क्षेमेंद्र कश्मीर नरेश कलश के सभासद ने औचित्य विचार चर्चा के माध्यम से साहित्य में औचित्य को आत्मसंस्थापनीय तत्व के रूप में मान्यता दी। यद्यपि आचार्य से पूर्ववर्ती काव्यशास्त्रीय चिन्तन में किसी न किसी रूप में औचित्य तत्व माना तो गया पर सहायक रूप में, जबकि आचार्य क्षेमेन्द्र ने उचितं प्राहुराचार्या सदृशं किल यस्य यत् उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते।। कहकर मानव जीवन में सर्वत्र औचित्य के महत्व को स्थापित किया।

इस प्रकार भारतीय काव्यशास्त्रीय चिन्तन/विमर्श परंपरा में कश्मीर के मनीषी समाज की दीर्घ कालीन देन को अनदेखा नहीं किया जा सकता। कश्मीर की यह परंपरा निश्चित रूप से भारतीय काव्यशास्त्रीय अट्टालिका के ऐसे सोपान है जिनके सहारे ही इस भव्यता तक पहुँचा जा सकता है।

अध्ययन आधार स्रोत

१. अवस्थी, कैलाश. *काव्यशास्त्र: युग और प्रवृतियाँ, कानपुर*: अभिलाषा प्रकाशन, १९७८.

२. जोशी, अनिरुद्ध. *संस्कृत अलंकार शास्त्र का समन्वित इतिहास*, दिल्ली : अजन्ता पब्लिकेशन, १९५४.

३. मिश्र, रामदहिन. *काव्य दर्पण*, पटना : ग्रन्थ माला कार्यालय, १९६०

४. *भारतीय साहित्यशास्त्र कोश*, संम्प राजवंश सहाय 'हीरा', पटना : बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, १९७३.

५. *हिन्दी साहित्य कोश (भाग १),* सम्प धीरेन्द्र वर्मा, वाराणसी : ज्ञानमंडल, १९८५.

कश्मीर में स्थित बौद्ध धर्म स्मारक

-डॉ. अमृता सिंह

हिमालय की गोद में समाई विश्व की अद्भुत व सुंदरतम कश्मीर घाटी को प्रकृति ने बड़ी सहजता से संवारा है, तो वहीं यह क्षेत्र आध्यात्म सम्पदा से भी भरपूर है। शैव मत, बौद्ध धर्म, इस्लाम की साँझी संस्कृति का यह क्षेत्र मिश्रित संस्कृति के विभिन्न आयामों से रू-ब-रू करवाता है। धर्म, दर्शन, साहित्य और ज्ञान की भूमि रही कश्मीर घाटी को ऋषि भूमि या शारदा पीठ भी कहा जाता था। विद्या की देवी माता शारदा की भूमि कश्मीर के संदर्भ में कहा जाता है कि जब प्राचीन काल में बच्चे की विद्या आरंभ की जाती थी तो बच्चे को कश्मीर की ओर मुँह कराकर बिठाया जाता था। इस संदर्भ में एक प्रसिद्ध श्लोक है "नमस्ते शारदे देवि कश्मीरपुर वासिनी, त्वामहं प्रार्थये नित्यं विद्यादानं च देहि में।"[1] अर्थात कश्मीर में विराजने वाली माँ शारदा, आप हमें विद्या का दान दें। बौद्ध संस्कृति का कश्मीर से गहरा संबंध है। बौद्ध धर्म शास्त्रीय कश्मीरी संस्कृति का एक महत्वपूर्ण भाग था जिसका वर्णन कल्हण द्वारा रचित राजतरंगिनी तथा नीलनाग के उपासकों के ग्रन्थ नीलमाता पुराण में मिलता है। राजतरंगिनी में कल्हण कश्मीर की अजय शक्ति पर गर्व करते हुए लिखते हैं "कश्मीर पर बल द्वारा नहीं केवल पुण्य द्वारा विजय प्राप्त की जा सकती है। वहाँ के निवासी केवल परलोक से भयभीत होते हैं, न कि शस्त्रधारियों से।"[2]

कश्मीर, ऐतिहासिक रूप से बौद्ध धर्म का एक महत्वपूर्ण केंद्र रहा है। कश्मीर में बौद्ध धर्म की उत्पत्ति का श्रेय मज्जांतिका नामक भिक्षु को जाता है, जिन्हें तीसरी बौद्ध परिषद के समापन पश्चात सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रसार हेतु कश्मीर तथा गांधार भेजा था। कश्मीर में बौद्ध धर्म व्यापक रूप से मौर्य सम्राट अशोक के समय में फैला, किन्तु इस धर्म के अनुयायी सुरेन्द्र नामक कश्मीर के प्रथम बौद्ध शासक के समय में भी थे। कश्मीर में बौद्ध धर्म का पुनरुत्थान कुषाण काल के राजा कनिष्क के शासनकाल में हुआ। इस समय को कश्मीर में बौद्ध धर्म का स्वर्ण युग माना जाता है। कुषाण शासन काल में कश्मीर बौद्ध शिक्षा का उच्च केंद्र बना, जो बौद्ध मिशनरियों हेतु महत्वपूर्ण

मध्यस्थ था। 'द मेकिंग ऑफ अर्ली कश्मीर: इंटरकल्चरल नेटवर्क्स एण्ड आइडेंटिटी फॉर्मेशन' में मुहम्मद अशरफ वानी और अमन अशरफ वानी लिखते हैं "इस अवधि (तीसरी शताब्दी सीई से छठी शताब्दी सीई) में कश्मीर से चीन जाने वाले बौद्ध विद्वानों की संख्या भारत के अन्य हिस्सों से जाने वालों की तुलना में बड़ी है।"[3] कनिष्क के शासनकाल में ही चौथी बौद्ध संगीति का आयोजन कश्मीर के कुंडलवन में हुआ, जिसका मुख्य उद्देश्य सर्वास्तिवाद को व्यापक आधार प्रदान करवाना था। कल्हण ने राजतरंगिनी में सदरहद्वन की पहचान हरवन के रूप में की है जो कश्मीर में बौद्ध धर्म के महत्व को प्रमाणित करता है। इस परिषद की अध्यक्षता वसुमित्र ने की थी जबकि अश्वघोष इसके उपाध्यक्ष थे। इसी परिषद में बौद्ध धर्म दो संप्रदायों- महायान तथा हीनयान में विभाजित किया गया। इस संगीति में त्रिपिटक (प्राचीनतम ग्रन्थ जिसमें भगवान बुद्ध के उपदेश संग्रहीत हैं) का पुनः संकलन व संस्करण हुआ। कश्मीर में आयोजित परिषद के समापन पश्चात भी बौद्ध धर्म के अनुयायी तथा प्रतिष्ठित बौद्ध भिक्षु मध्य एशिया, चीन, तिब्बत तथा भारत के अन्य क्षेत्रों से यहाँ आते रहे। कश्मीर में आयोजित चतुर्थ बौद्ध परिषद के तथ्य को प्रमाणित करते हुए ह्वेन त्सांग, बु स्टोन तथा तरंथा के कथनानुसार "विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा विश्वास की विभिन्न व्याख्याओं को समेटने के लिए जो परिषद बुलाई गई थी, जिसमें 500 अर्हत, 500 बोधिसत्व और 500 पंडितों ने भाग लिया था।"[4] अशोक के उत्तराधिकारी जलौका (जिसे जलुका नाम दे भी जाना जाता है) कश्मीर के सक्रिय और प्रतिष्ठित राजा के शासनकाल के समय बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार अस्थायी रूप से थम गया किन्तु कुछ समय पश्चात ये धीरे-धीरे पुनः विकसित हुआ। कश्मीर में धर्म के प्रचलन हेतु राजा सुरेन्द्र ने नरेन्द्रभवन नामक विहार (जो कि ज़ोजीला से दूर सौरका शहर में था) तथा एक अन्य विहार (सौसारा, अंचार झील के पास स्थित सौरा) का निर्माण किया। अपने शासन काल में धर्मनिष्ठ बौद्ध राजा अशोक ने शुष्कलेत्र और वितस्तात्र नामक दो स्थानों पर कई स्तूपों का निर्माण करवाया। अशोक का उत्तराधिकारी जलौका जो कि वास्तव में शैव भक्त था ने भी बौद्ध धर्म से प्रभावित हो वराहमूला (बारामुला) के आसपास के क्षेत्र में

कृतिश्रमविहार नामक एक बड़े विहार का निर्माण किया। राजा मेघवाहन के समय कश्मीर में कई बड़े बौद्ध-स्तूपों का निर्माण कराया गया। घाटी में बौद्ध धर्म को विकसित और सशक्त करने के लिए कुषाण साम्राज्य के शासकों ने भी कई मठों, चैत्यों तथा अन्य बौद्ध नीवों की स्थापना की। इनके अतिरिक्त कश्मीर में सोपोर ज़िले में जालुर जैनगीर , वितस्त्र और अनंतनाग ज़िले में व्याथावोतुर नामक जलोरा विहार तथा वर्तमान बडगाम में एक स्तूप शामिल है। कश्मीर के इतिहासकार कल्हण अभिलेखबद्ध करते हैं "अशोक ने बड़ी संख्या में स्तूप और शिव के कुछ अहाने के अतिरिक्त श्रीनगरी शहर का निर्माण किया था, जिनमें से दो राजा के नाम पर 'अशोकेश्वर' कहे जाते हैं।"[5]

बारामूला में उशकुरा के खंडहर, ललितादित्य द्वारा बनवाए गए स्तूप का प्रतिनिधित्व करते हैं, तो वहीं परिहसपोरा में तीन बौद्ध इमारतें- एक स्तूप, मंदिर तथा मठ जिसे ललितादित्य का राज-विहार माना जाता है प्राप्त हुए। बारामुला ज़िले के पट्टन तहसील में स्थित परिहसपोरा का राजविहार बौद्ध चैत्य का एकमात्र जीवित उदाहरण के रूप में सुरक्षित है। परिहसपोरा, जो स्थानीय रूप से 'कानी शहर' नाम से जाना जाता है को कश्मीर की प्राचीन राजधानी माना जाता है। यह शहर राजा ललितादित्य मुक्तापिडा द्वारा झेलम नदी के ऊपर एक पठार पर निर्मित किया गया था। बौद्ध धर्म के अनुयायी राजा ललितादित्य ने परिहसपोरा में बुद्ध की 50 मीटर लंबी मूर्ति के अतिरिक्त विहार भी बनवाए। इतिहासकार व कवि ज़रीफ़ अहमद ज़रीफ़ ने राइज़िंग कश्मीर से की गई बातचीत में बताया कि "उन्होंने धार्मिक स्थलों का निर्माण और जीर्णोद्धार कराया। उन्होंने घाटी में 350 विहार सहित सिंचाई नहरें भी बनवाईं, जहाँ बौद्ध प्रार्थना करते थे।"[6] अतः यह कहना असंगत न होगा कि छोटा-सा यह शहर अपने असामान्य पुरातात्विक स्मारकों के लिए जाना जाता है।

श्रीनगर में स्थित विश्व प्रसिद्ध बौद्ध स्थल हारवन बौद्ध स्तूप की खोज सर अर्ल स्टेन ने की थी। इस स्थल की खुदाई के दौरान बौद्ध स्तूप मिले हैं। संरक्षित स्मारक घोषित किए गए इस बौद्ध स्थल की देखरेख अब भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण कर रहा है। आर. सी. काक अपनी पुस्तक 'Ancient Monuments of Kashmir' में लिखते हैं "While

digging under its foundations a copper coin of Toramana, the White Hun ruler, who flourished in about the fifth century CE. was inferred that the diaper rubber stupa could not possibly be earlier than the 5th century CE thought it might be considered later in the date."[7]

अतः कहा जा सकता है कि बौद्ध धर्म समूचे एशिया को आप्लावित कर यूरोप तक जा पहुँचा। बुद्ध से जुड़े अवशेषों, स्मारकों, मठों आदि की खोज विश्व भर में निरंतर जारी है, क्योंकि विश्व भर में सभी देशों में खुदाई से बुद्ध अवशेष प्राप्त हुए हैं, जो इस कहावत को सशक्त करते हैं 'हुआ युद्ध निकले बुद्ध।' विद्या की देवी शारदा व कश्यप ऋषि का निवास स्थान कश्मीर बौद्ध धर्म का केंद्र भी रहा है। कल्हण की राजतरंगिनी कश्मीर में बौद्ध धर्म के महत्व के प्रमाण प्रस्तुत करती है, तो वहीं चीनी यात्री ह्वेन त्सांग ने भी अपने विवरण में घाटी में बौद्ध धर्म के प्रसार का उल्लेख किया है।

संदर्भ सूची-

1. कण, पाथेय. *कश्यप ऋषि का कश्मीर सदियों तक रहा हिन्दू तथा बौद्ध धर्म का केंद्र* ,patheykan.com/कश्यप-ऋषि..
2. रैना, शिबन कृष्ण. *कल्हण और उनकी राजतरंगिनी* ,punjabkesari.in , https//:m.punjabkesari.in/aapki-kalam-se /news/kalhan-and-his-royal-lady
3. मीर, शाकिर. *पुस्तक समीक्षा: द मेकिंग ऑफ अर्ली कश्मीर*,www.outlookindia.com
4. *कश्मीर में बौद्ध धर्म* ,India Netzone ,www.indianetzone.com
5. Kalhan- the historian of Kashmir ,records that Ashoka built the town of Srinagari besides a large number of stupas and some shrines to siva , two of which were called Ashokesvara after the king. Lipika Singh ,*The World of Buddhism (Vol.II)* , pg. 185
6. *Parishaspora: The forgotten capital of Kashmir* ,Rising Kashmir ,https//:risingkashmir.com
7. Shah.Manan ,*A Buddhist Monastery of Kashmir Buried in the Past* ,www.inversejournal.com
8. गैरोल, वाचस्पति. *संस्कृत साहित्य का इतिहास*
9. गोयल, प्रीतिप्रभा. *भारतीय संस्कृति*

डॉ. अमृता सिंह
हिन्दी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय
श्रीनगर , कश्मीर

संस्कृति बनाम कश्मीरिय़त

डॉ. उमर

तथ्यतः समाज का निर्माण मानव द्वारा संपन्न होता है और यही समाज संस्कृति को जन्म देता है। "मानवीय आदर्शों, मूल्यों, स्थापनाओं एवं मान्यताओं के समूह को संस्कृति कहा जाता है।" संस्कृति की अवधारणा को प्रतिपादित करते हुए "सांस्कृतिक मानव विज्ञान" के संस्थापक एडवर्ड बर्नेट टायलर (सन् 1832-1917 ई.), सन् 1871 ई. में प्रकाशित अपनी पुस्तक Primitive culture के प्रथम अध्याय-"The Science of Culture" के आरंभ में लिखते हैं- "Culture, or civilization, taken in its broad, ethnographic sense, is that complex whole which includes knowledge, belief, art, morals, law, custom, and any other capabilities and habits acquired by man as a member of society." अर्थात् संस्कृति अपने नृवंशविज्ञान (मानव-जाति विज्ञान) के व्यापक अर्थ में उस समुच्चय का नाम है जिसमें ज्ञान, आस्था, कला, नैतिकता, विधि-विधान, रीति-रिवाज तथा अन्य ऐसी क्षमताओं और आदतों का समावेश होता है, जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में अभिगृहीत करता है।

समाजशास्त्र के प्रख्यात विद्वान डॉ. श्यामाचरण दुबे का मत है- "प्रत्येक मानव-समुदाय का जीवन-यापन का अपना विशिष्ट ढंग होता है। मानव-विज्ञान (नृतत्व) की भाषा में इसे ही संस्कृति कहते है।"

एक और विद्वान अपने शोध-प्रबंध में संस्कृति का निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं- "संस्कृति मानव जीवन की वह अवस्था है, जहाँ उसके प्राकृतिक राग-द्वेषों का परिमार्जन होता है। संसार में जहाँ-जहाँ भी मानव जीवन है, मानव समाज है, वहाँ-वहाँ उसकी अपनी संस्कृति है।"

अतः संस्कृति मूलतः एक सामाजिक विधि है जिसका सीधा संबंध मानव-समाज की पारंपरिक गतिविधियों एवं जीवन-शैली से है। इसका क्षेत्र बहुत ही

विस्तृत व सर्वव्यापी है। यही कारण है कि संस्कृति का काव्यकरण मानव की आदिम प्रवृत्ति रही है।

वस्तुतः कश्मीर की संस्कृति विविध संस्कृतियों का एक संगम सेतु है, जहाँ अनेकता में भी एकता दिखायी देती है। "कश्मीरी संस्कृति किसी धर्म-विशेष से जुड़ी संस्कृति का नाम नहीं है, बल्कि कश्मीरिय़त स्वयं में एक अलग संस्कृति है। सर्व-धर्म सम्भाव, सूफ़ी विचारधारा, फ़कीरी संस्कृति, आपसी सद्भाव एवं भाईचारा आदि ही इसके आभूषण हैं।" कश्मीर प्राचीन काल से ही अपनी बहुरंगी संस्कृति के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध रहा है। कश्मीर की सांस्कृतिक विरासत हिंदू, सिख, बौद्ध और इस्लामिक ज्ञान-विद्या एक सूत्र में पिरोती है। कश्मीर की संस्कृति विश्व की विशिष्टतम संस्कृतियों में से एक है। इसकी इसी विशिष्टता का एक सगुण आयाम है, जिसे सामान्यतः कश्मीरिय़त कहा जाता है।

निःसंदेह कश्मीरिय़त मानवतावाद, सांप्रदायिक सौहार्द्र और सहिष्णुता के मूल्यों पर आधारित है। यही कश्मीरिय़त वर्तमान में भी मानवता का पर्याय मानी जाती है। कश्मीरी संस्कृति सदा विश्व के साहित्यकारों के आकर्षण का केंद्र रही है। कश्मीर के अधिकतर कवियों ने कश्मीरी संस्कृति से जुड़े बहुधा आयामों जैसे खान-पान, वेशभूषा, पर्व-त्यौहार, रीति-रिवाज, आचार-विचार आदि का मुक्त कंठ से गुण-गान किया है। वे अपनी मातृभूमि के अलगाव में भी उस महक और स्वाद को नहीं भूलते जो कभी उसकी आँखों के सामने से उत्पन्न हुआ करती थी, किंतु अब शहरी वातावरण में उसकी स्मृति उसके मन को बार-बार कौंधती तो है परंतु एक मीठी कल्पना की उड़ान उसे फिर उन्हीं गलियारों में ले जाती है। उसकी स्मृति में वह दृश्य यकायक जन्म लेता है-

"उस पार…
अगरबत्तियों की महक आती है कभी-कभार दूर से
रसोई से उठती है धुएँ की शहतीर

कानुल साग और 'वोस्तहाख' की मिली-जुली गंध।
और वे इंतज़ार करते हैं
वक़्त के गुज़र जाने का।"

कुच्छेक कवियों ने तो कश्मीर घाटी के इतिहास का प्रसंग प्रस्तुत कर सादृश्य विधान द्वारा नवीन सांस्कृतिक संदर्भों को रेंखांकित किया है। अपनी विरासत को सुरक्षित रखने और भली-भाँति उसकी स्तुति करने में वह कोई समझौता नहीं करते हैं, क्योंकि वे अपने सांस्कृतिक सरोकारों एवं अतीत के गौरव में अधिक आस्था रखते हैं, जिसकी अभिव्यक्ति वे मुक्त-कंठ से करते हैं।

इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है कि कश्मीरियत न केवल एक संस्कृति है अपितु एक दर्शन है, एक परंपरा है, एक आभूषण है, एक मानसिकता है, एक परदुःखकातरता की भावना से अनुप्राणित एक भाव व भावना है और शांति की अमिट मशाल का मानचित्र है। अतः कश्मीरियत आपसी-भाईचारे और सांझी विरासत की अलंकारिक व अनूठी इमारत है।

डॉ. उमर
अध्यापक, हिंदी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर, कश्मीर

भाषा विज्ञान की अवधारणा और रामविलास शर्मा

-अब्दुल हफ़ीज़

रामविलास शर्मा हिंदी के एक ऐसे आलोचक रहे हैं, जिन्होंने साहित्य का मूल्यांकन और सामाजिक विकास की पुनर्व्याख्या तो किया ही है इसके साथ इतिहास और भाषा विज्ञान के क्षेत्र में भी सहृदयता के साथ महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। "दुनिया में ऐसे व्यक्ति कम हैं जो साहित्यिक-सामाजिक स्तर पर सक्रिय मार्क्सवादी हों और भाषाविज्ञान में भी तल्लीनता से प्रवेश करें।"[1] रामविलास शर्मा का शिक्षा और अध्यापन का विषय अंग्रेज़ी था, वे लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी साहित्य में गोल्डमेडलिस्ट भी थे । आजीवन अंग्रेज़ी पढ़ाते हए भी उन्होंने अपनी लेखनी का माध्यम अपनी जातीय भाषा हिंदी को चुना और अपना सभी महत्त्वपूर्ण कार्य हिंदी में किया। भाषा विज्ञान की पुस्तकें हिंदी में लिखकर रामविलास शर्मा ने यहाँ के बुद्धिजीवियों की जो औपनिवेशिक जड़ मानसिकता थी उसपर प्रहार करने के साथ ही अपनी जाति के प्रति अनोखा उदाहरण प्रस्तुत किया। उनके चिंतन के केंद्र में भाषा और जाति आरम्भ से रहे हैं।

भाषा विज्ञान तथा भाषा समस्या पर आधारित उनकी कृतियों में- 'भाषा और समाज' (1961), 'राष्ट्र भाषा की समस्याएँ' (1965) (1978 में संशोधित होकर यह पुस्तक भारत की भाषा समस्या के नाम से प्रकाशित हुई), 'आर्य और द्रविड़ भाषा परिवारों का सम्बन्ध' (1979), 'भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी'- तीन भागों में (1979, 1980, और 1981) एवं 'ऐतिहासिक भाषा विज्ञान और हिंदी' प्रमुख हैं। ये सभी पुस्तकें इस बात का प्रमाण हैं कि भाषा विज्ञान की स्थिति को लेकर वे चिंतित थे। पूर्व स्थापित भाषा विज्ञान से सम्बंधित कई मान्यताओं को उन्होंने तथ्यों के आधार पर उलट-पलट दिया था।

रामविलास शर्मा का भाषा विज्ञान के क्षेत्र में उतरने के पीछे कुछ महत्त्वपूर्ण कारण रहे हैं, उनका सभी लेखन उद्देश्यपूर्ण रहा है। भाषा विज्ञान के क्षेत्र में चली आ रही कुछ बुनियादी मान्यताएँ जो गलत तथ्यों पर आधारित थीं उसपर उन्होंने प्रश्न खड़े किए।

ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान की धारणा थी कि भारतीय आर्य भाषाओं का जो विकास हुआ है वह वैदिक भाषा के रूप में उपलब्ध उस आदि आर्य भाषा से हुआ जो भारत-ईरानी शाखा की एक टहनी थी- "मामला भारोपीय (इंडो-यूरोपीय) परिवार के निर्माण से शुरू हुआ था। यह धारणा उन्नीसवीं सदी के औपनिवेशिक दिमाग की उपज है कि सिर्फ़ आर्य ही नहीं द्रविड़, कोल, नाग भी अपने भाषा-तत्त्व बाहर से लाए।"[2] इन भाषाओं का विकास भाषा-परिवारों के आपसी संपर्क से न होकर अलग-थलग हुआ। यहाँ पर एक दिक्कत यह भी थी कि आर्य-द्रविड़ परिवारों की भाषा में भी परस्पर सम्बन्ध खोजने का प्रयत्न नहीं किया गया। वैदिक भाषा को भारत-ईरानी शाखा की एक टहनी स्वीकार करने के अतिरिक्त भारतीय भाषा पंडितों का दृष्टिकोण वही है जो पश्चिमी भाषा वैज्ञानिकों का था। उनका मानना था कि, "हिंदी शुद्ध लिखना है तो अधिक-से-अधिक संस्कृत का अनुसरण करना चाहिए।"[3] रामविलास शर्मा की टकराहट यहाँ पर भारतीय और पाश्चात्य दोनों से है। वे लिखते हैं- "जहाँ तक आधुनिक आर्य भाषाओं के विकास का संबंध है, भारत के पुरातन पंथी पंडित और यूरोप के आधुनिकता बोध वाले विद्वान दोनों मानते हैं कि इनका स्रोत वैदिक भाषा है, यही नहीं वैदिक भाषा के बाद संस्कृत-पाली-प्राकृत-अपभ्रंश वाली परम्परा भी दोनों कोटि के विद्वानों को स्वीकार है। वैदिक भाषा से भिन्न यहाँ एक या अनेक आर्य भाषाएँ थीं, यह उनके लिए कल्पनातीत है, वैदिक भाषा से पहले भी यहाँ कोई प्राचीनतर आर्य भाषा थी, ऐसा सोचने का पाप न तो प्राचीनता-प्रेमी भारतीय पंडितों ने किया है, न आधुनिकता-प्रेमी पाश्चात्य विद्वानों ने।"[4] रामविलास शर्मा का यह दृष्टिकोण सही है कि वैदिक भाषा जो कि इतनी समृद्ध रही है वह अचानक से इधर-उधर के रास्ते से अस्तित्व में नहीं आ गयी होगी। इसके पीछे ज़रूर एक सुदीर्घ विकसित परम्परा रही होगी।

रामविलास शर्मा का मानना है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात यूरोप में भाषा विज्ञान के क्षेत्र में सर्वाधिक कार्य हुआ है। इसमें अमेरिकी भाषा वैज्ञानिक ब्लूमफील्ड जो कि विवरणात्मक भाषा विज्ञान के प्रमुख आचार्य थे और इनके बाद परिणामी

(जेनरेटिव) व्याकरण के आचार्य रहे चाम्स्की का अध्ययन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। पाणिनि के महत्त्व को इन दोनों भाषा वैज्ञानिकों ने श्रद्धा और गंभीरता के साथ स्वीकार किया है लेकिन भारत में पाणिनि का मूल्यांकन जिस प्रकार से होना चाहिए था उस प्रकार हुआ नहीं हुआ। रामविलास शर्मा लिखते हैं- "स्वयं भारत में पाणिनि का जो पुनर्मूल्यांकन अपेक्षित था, वह नहीं हुआ, पाणिनि और संस्कृत के भाषा वैज्ञानिक रिक्थ से प्रेरित होकर भारतीय भाषा विज्ञान को जो प्रगति करनी चाहिए थी, वह उसने नहीं की। इसका मुख्य सामाजिक कारण भारतीय सामंतवाद का ह्रास और उसके ह्रास काल में यहाँ अंग्रेज़ों का प्रभुत्व था। संस्कृत और पाणिनि के अध्ययन-अध्यापन की पद्धति वही पुराने ढंग की बनी रही।"[5] रामविलास शर्मा का मानना है कि ब्लूमफील्ड का विवरणात्मक भाषा विज्ञान यांत्रिक भौतिकवाद से प्रभावित था तथा इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप चाम्स्की का परिणामी भाषा विज्ञान जो आया वह भाववाद से प्रभावित था। चाम्स्की के जेनरेटिव भाषा विज्ञान की बुनियादी धारणा यह रही है कि एक विश्वजनीय व्याकरण का स्वरूप प्रत्येक व्यक्ति की चेतना में मौजूद रहता है। "चाम्स्की की मान्यताएँ 19वीं सदी और उससे पहले के भाववादी पाश्चात्य व्याकरणों के चिंतन पर आधारित है। चाम्स्की ने विवरणात्मक भाषा विज्ञान की जो आलोचना की है, वह अनेक रूपों में महत्त्वपूर्ण और सारगर्भित है। उन्होंने और उनके सहयोगिओं ने भाषाओं के विश्लेषण में ऐसी अनेक बातें कहीं हैं जिससे पुराने विवरणात्मक भाषा विज्ञान की कुछ खामियाँ दूर की जा सकती हैं। पर यह परिणामी व्याकरण शास्त्र है, उसी विवरणात्मक भाषा विज्ञान का अंग। उसका लक्ष्य है किसी भी भाषा का सम्पूर्ण और वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत करना।"[6]

रामविलास शर्मा अपनी पुस्तक 'भाषा और समाज' के प्रथम संस्करण में ऐतिहासिक भाषा विज्ञान की धारणाओं का खंडन करते हैं। यह जो खंडन था वह ऐतिहासिक भाषा विज्ञान की चली आ रही प्रचलित पद्धति का था। इस पुस्तक के दूसरे संस्करण की भूमिका में उन्होंने अपनी पूर्ववर्ती अवधारणाओं को वृहत रूप में प्रस्तुत

किया और फिर इसका विस्तार 'भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी' (तीन खंड) नामक पुस्तक में किया। शम्भुनाथ लिखते हैं- "वह वस्तुतः ऐतिहासिक भाषा विज्ञान का नया मार्ग निकालना चाहते थे। वे यह खोज ऐसे समय कर रहे थे, जब दुनिया के भाषा वैज्ञानिक अध्ययनों में यह एक बंद अध्याय था। उनकी खोज उनके भीतर खौलते ऐसे सवालों से जन्मी थी, जिनकी ऐतिहासिक भाषा वैज्ञानिकों ने उपेक्षा की थी।"[7] एक भाषाई क्षेत्र के रूप में इन प्रश्नों का संबंध भारत के अस्तित्तव से था, सदियों से भारत में रहते आ रहे अनेक भाषा-परिवारों के संपर्कों और उनकी उन सामान्य विशेषताओं से था जो यहाँ से बाहर उन्हीं परिवारों की भाषाओं में नहीं मिलता है। रामविलास शर्मा प्रश्न उठाते हैं- "संस्कृत के जो तत्त्व न तो यूरोप की भाषाओं में हैं और न द्रविड़-कोल भाषाओं में, वे उसके अपने तत्त्व हैं या नहीं?"[8] वस्तुतः रामविलास शर्मा ने इंडो-यूरोपियन भाषा के लिए 'एक आदि भाषा' के स्थान पर 'अनेक स्रोत्र-भाषाओं के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। उन्होंने 'एक आदि भाषा जननी दूसरी भाषाएँ पुत्रियाँ' इस मान्यता का खंडन किया था।

ऐतिहासिक भाषा विज्ञान की कमज़ोरियों को दूर करना रामविलास शर्मा का मुख्य उद्देश्य रहा है। ऐतिहासिक भाषा विज्ञान की मान्यता है कि सभी भाषा परिवारों की उत्पत्ति किसी न किसी आदि भाषा से हुई है। आदि आर्य, आदि द्रविड़ आदि सभी भाषाओं की कल्पना भी इसी प्रकार की गयी है। एक आदि भाषा जननी और दूसरी भाषाएँ उसकी पुत्रियाँ, ऐतिहासिक भाषा विज्ञान के नाम पर जिस भाषा परिवार पर सर्वाधिक कार्य हुआ वह इंडो-यूरोपियन है- "ऐतिहासिक भाषा विज्ञान की इस परम्परागत अवधारणा के अनुसार इस परिवार की प्राचीन और नवीन भाषाएँ एक आदि इंडोयूरोपियन भाषा से उत्पन्न हुई है।"[9] इस आदि भाषा की कई शाखाएँ निकली जिसमें से एक शाखा के लोग भारत में आए। इन लोगों को भारतीय आर्य कहा गया। जब भारत में आर्यों ने कदम रखा तो सबसे पहले उन्होंने यहाँ के मूल निवासियों को पीछे भगा दिया था और फिर उनपर विजय हासिल कर उनको दासों की तरह जीवन व्यतीत करने

को विवश कर दिया था- "इसी भारतीय आर्य भाषा से क्रमशः प्राकृतों और अपभ्रंशों का विकास हुआ। इसी सिद्धांत के तहत भाषा का विकास दिखाने के लिए आदि मध्य और आधुनिक आर्य भाषा का सुगम नसेनी तैयार की गयी।"[10] इसी के आधार पर संगत और असंगत ढंग से विद्वान शब्दों की व्युत्पत्ति और विकास आदि दिखा रहे थे। इसी तरह भारत के द्रविड़, कोल (मुंडा) और नाग तीनों भाषा-परिवारों के सन्दर्भ में भी आद्य, मध्य और आधुनिक (नव्य) भाषाओं की कल्पना विद्वानों ने कर ली थी या करने का प्रयत्न कर रहे थे। इस पद्धति को अपनाकर भाषा-गठन की जो स्वाभाविक प्रक्रिया थी उसको भुला दिया गया। रामविलास शर्मा लिखते हैं- "भाषाओं के बारे में जितनी भी सामग्री प्राप्त है, उससे यही सिद्ध होता है कि बोली के आधार पर परिनिष्ठित भाषा का विकास होता है, परिनिष्ठित भाषा से बोलियाँ उत्पन्न नहीं होती। दो भाषाओं या बोलियों के मिश्रण से उत्पन्न होने वाले रूपों की बात अलग है। खड़ी बोली के आधार पर हिंदी विकसित हुई; लंदन (या मिडलैंड) की बोली के आधार पर अंग्रेज़ी और मास्को की बोली के आधार पर रूसी विकसित हुई।"[11]

रामविलास शर्मा ने गहन अध्ययन और विश्लेषण करके बताया कि जिसको हम भाषा कहते हैं, वह स्वयं सामाजिक विकास की एक निश्चित मंज़िल में सुलभ होती है। आदि मानव के समाज का जो सामान्य नियम है वह बोलियों का बिखराव है। जिस प्रकार से किसी आदि पुरुष से मानव परिवार की उत्पत्ति नहीं हुई है उसी तरह से किसी आदि भाषा से कोई भाषा परिवार नहीं बना है- "भाषाओं के परिवार होते ज़रूर हैं किन्तु उनके निर्माण की प्रक्रिया यह नहीं है कि आदि भाषा के विकृत या परिवर्तित होने से नई-नई भाषाएँ पैदा हो गयीं हैं।"[12] रामविलास शर्मा का मत है कि भाषा परिवार स्थिर और जड़ इकाई नहीं है। उसका जो विकास होता है वह दूसरे परिवारों के साथ रहकर होता है। "भाषा परिवार के निर्माण काल में उस परिवार की भाषाएँ बोलने वाले मानव समुदाय गण समाजों में संगठित होते हैं। ये गण कबीले, ट्राइब हज़ारों साल तक घुमंतू जीवन बिताते हैं। सामाजिक विकास क्रम में कृषि सभ्यता की मंज़िल काफी देर से

आती है। कृषि सभ्यता का आरम्भ होने से पहले अपने घुमंतू जीवन के कारण विभिन्न गण समाज एक-दूसरे के संपर्क में आते हैं। भाषा परिवारों के मूल तत्त्वों का निर्माण गण व्यवस्था की इस पहली मंज़िल में होता है जब कबीले अधिकतर घुमंतू जीवन बिताते हैं। स्वभावतः ये मूल तत्त्व किसी एक कबीले के नहीं होते अनेक कबीलों के होते हैं। उन्हें ये कबीले अनेक स्रोतों से प्राप्त करते हैं।"[13]

ऐतिहासिक भाषा विज्ञान तथा समाजी भाषा विज्ञान की पद्धतियों को मिलाकर रामविलास शर्मा ने भारत के प्राचीन भाषा परिवार के रूप में इंडो-यूरोपियन से अलग एक संकल्पना को प्रस्तुत किया। वे भाषाओं के इतिहास की जानकारी प्राप्त करने के लिये नए रास्ते पर निकलते हैं। उन्होंने पूर्व चली आ रही ऐतिहासिक भाषा विज्ञान की धारणा का खंडन किया है- "सभी भारतीय भाषा-परिवारों के स्रोत भारत से बाहर हैं और भारत की अपनी कोई भी प्राचीन भाषा-संपदा नहीं है।"[14] वे 'एक भाषाई क्षेत्र' के रूप में भारत को प्रमुख अनुसंधान-भूमि स्वीकार कर हिंदी की विकास प्रक्रिया का सामाजिक सन्दर्भ में, मुख्य रूप से बोलियों के सन्दर्भ में भाषा वैज्ञानिक उदघाटन करते हैं- "उन्होंने सिर्फ़ हिंदी नहीं, सभी भारतीय भाषाओं के विकास को अपनी विवेचना के दायरे में रखा है।"[15] एक प्रकार से देखा जाए तो रामविलास शर्मा ने भाषा विज्ञान की क्रांतिकारी संभावनाओं को निकालकर सामने रखा है।

प्राचीन काल से ही भारतीय भाषा परिवेश में विविधता के अलावा आर्य-द्रविड़ भाषा समूह धुरी के समान है। रामविलास शर्मा का मानना है कि एक समय ऐसा भी था जब द्रविड़ और इंडो-यूरोपियन परिवारों के आपसी संबंधों पर भाषा विज्ञानी विचार-विमर्श करते थे। काफी समय से जो औपनिवेशिक जाल आर्य-द्रविड़ विभाजन का बनाया गया है उसको रामविलास शर्मा खंडित करते हुए अपनी भाषा वैज्ञानिक विवेचना का उद्देश्य दर्शाते हुए लिखते हैं- "मध्य एशिया, पश्चिम एशिया, दक्षिण-पूर्वी एशिया, प्रशांत महासागर के द्वीप समूह और यूरोप की भाषाओं से, विभिन्न युगों में,

हमारे देश के भाषा-परिवारों का संबंध रहा है।"[16] इस प्रकार के कथन से प्रतीत होता है कि वे भाषा विज्ञान के माध्यम से भारतीय आत्महीनता का समाधान कर रहे थे।

विडम्बना यह रही है कि जब भाषा विज्ञान के विकास का काल था, उस समय भारत अंग्रेज़ों का उपनिवेश था। भारत में अंग्रेज़ों की नीति धर्म, जाति और भाषा के नाम पर विभिन्न जाति के समूहों को बड़ी चतुराई से आपस में लड़ाने की रही है। इन सब में वे सफल भी हुए थे। अंग्रेज़ों को यहाँ मुख्यतः दो भाषा समूह दिखाई दिए आर्य और द्रविड़ भाषा समूह। रामविलास शर्मा लिखते हैं- "एक उत्तर भारतीय आर्य भाषा समूह और दूसरा दक्षिण भारतीय द्रविड भाषा समूह। यदि यह सिद्ध किया जाय कि आर्य आक्रमणकारियों ने भारत आकर द्रविड़ भाषाओं का दमन किया तो इसकी प्रतिक्रिया अंग्रेज़ों के लिए लाभप्रद होगी। कुछ ईसाई धर्म प्रचारकों ने बड़ी लगन से और बड़ी सूझ-बूझ से द्रविड़ भाषाओं पर कार्य किया किन्तु उनके इस बहुत अच्छे काम का एक उद्देश्य यह भी था कि वे द्रविड़ भाषियों को समझाएँ की उत्तर भारत के ब्राह्मणों ने तुम पर अपनी भाषा लादी है, इसलिए तुम्हारा कर्तव्य न केवल संस्कृत के चंगुल से निकलना है वरन ब्राह्मण धर्म की दासता से मुक्त होना भी है।"[17] ऐतिहासिक भाषा विज्ञान की कमज़ोरियों को पकड़ कर रामविलास शर्मा ने साम्राज्यवादियों के षड्यंत्र का भेद उजागर करने के साथ भारत को एक भाषाई क्षेत्र प्रतिष्ठापित किया था। उन्होंने पूर्व चली आ रही इस अवधारणा का खंडन किया कि संस्कृत से ही आधुनिक भारतीय भाषाएँ विकसित हुई हैं। भाषाओं का जो विकास होता है वह वंश वृक्ष की भांति न होकर नदी की धारा के समान होता है। जिस प्रकार से पहाड़ों के मध्य से निकलने वाली नदी जब समुद्र तक का मार्ग तय करती है तो बीच-बीच में कई छोटी-छोटी नदियाँ मिलती हैं जो उसमें समाहित हो जाती हैं। ठीक उसी प्रकार भाषाओं का भी विकास होता है- "हम जितना ही अपने अतीत में जायेंगे, भाषाओं की संख्या बढ़ती जाएगी। आज जो भी भाषाएँ जीवित हैं उनका विकास संस्कृत से नहीं बल्कि उन्हीं के पुराने रूपों से हुआ है।"[18]

रामविलास शर्मा की भाषा विज्ञान से सम्बंधित जो अवधारणा है उसमें उनको सबसे अधिक सहारा आचार्य किशोरीदास वाजपेयी की मान्यताओं का मिला था। वाजपेयी जी का मानना था कि वैदिक भाषा एक सुदीर्ध विकास का नतीजा है। 'भारतीय भाषा विज्ञान' नामक अपनी पुस्तक में उन्होंने लिखा है- "जब वेदों की रचना हुई उससे पहले ही भाषा का वैसा पूर्ण विकास हो चुका होगा। वैदिक भाषा का आधार एक जन भाषा थी। उसमें बहुत सा साहित्य रचा गया। वेदों की रचना से पहले छोटा-मोटा और हल्का-भारी न जाने कितना साहित्य बना होगा तब वेदों का नंबर आया होगा। वह सब काल कवलित हो गया।"[19]

रामविलास शर्मा का मत है कि ऐतिहासिक भाषा विज्ञान में भाषा का जो रूप तत्त्व है उसपर अधिक बल दिया गया है, जबकि उसके अर्थ तत्त्व की उपेक्षा की गयी है। देखा जाए तो किसी भी स्तर पर भाषा का विवेचन अर्थ तत्त्व को ध्यान में रखे बगैर संभव नहीं हो सकता है। "समाजी भाषा विज्ञान, ऐतिहासिक भाषा विज्ञान और विवरणात्मक भाषा विज्ञान परस्पर संबंध है, इन तीनों के मूल से वृहत्तर भाषा शास्त्र की ईकाई निर्मित होती है। ध्वनि तंत्र, विन्यास तंत्र (रूप तंत्र + वाक्य तंत्र) परस्पर संबंध है। इस ईकाई में अर्थ तत्त्व प्राण की तरह प्रतिष्ठित है।"[20]

आदि भाषा बोलने वाले समुदाय के लोग एक ही गण-समाज में संगठित नहीं रहते थे,बल्कि वे सब विभिन्न गण-समाजों में संगठित होकर अलग-अलग भाषाएँ बोलते थे। राविलास शर्मा ने लिखा है कि, "भारत में वैदिक काल के गण-समाज, बौद्धकालीन महाजनपद, सूरदास-तुलसीदास के समय के जनपद और प्रेमचंद-निराला की हिंदी भाषी जाति ये सब मिलकर ऐतिहासिक विकास की ऐसी अविछिन्न श्रंखला प्रस्तुत करते हैं, जैसी अन्यत्र सुलभ नहीं है।"[21] इस प्रकार से उन्होंने ऐतिहासिक भाषा विज्ञान की पश्चिमी पद्धति तथा राष्ट्रीय विकास की भारतीय अंतर्वस्तु के मध्य एक संबंध तैयार कर भाषाओं के विकास के लिए नये रास्तों की खोज में निकले हुए दिखाई देते हैं। वे इस बात पर काफी ज़ोर देते हैं कि जो विद्वान अवधी, ब्रज आदि के साथ

पुरानी जनपदीय भाषाओं के साहित्य को हिंदी से अलग करके देखते हैं, वे सभी जातीय विकास की प्रक्रिया के प्रति अपनी अज्ञानता को दर्शाते हैं। जो लोग हिंदी के अस्तित्त्व को नकारते हैं उनके बारे में उन्होंने लिखा है- "यह बात बहुत साफ़ है कि जो लोग हिंदी का अस्तित्त्व अस्वीकार करते हैं और हिंदी भाषा की एकता खंडित करना चाहते हैं, वे कहीं न कहीं भारत की राष्ट्रीय एकता का भी विरोध करते हैं। कारण यह है कि इस राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने का माध्यम हिंदी है।"[22] वर्तमान समय में हिंदी को बाज़ार, सिनेमा और मीडिया ने देश के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँचा दिया है साथ ही इसके बोलने और समझने वाले क्षेत्र एवं संख्या में बढ़ोत्तरी भी निरंतर होती जा रही है।

भाषा विज्ञान के अध्ययन के लिए रामविलास शर्मा ने जिस शाखा को अपना आधार बनाया उसको समाज भाषा विज्ञान (सोसियोलिंग्विस्टिक्स) पुकारा जाता है। लेकिन वे उसे समाजी भाषा विज्ञान पुकारते हैं। 'भाषा और समाज' पुस्तक की द्वितीय भूमिका में रामविलास शर्मा ने भाषा विज्ञान की जिस पद्धति का अनुसरण किया है वह पूर्व चली आ रही प्रचलित पद्धति के विपरीत है। उन्होंने इस पद्धति की 10 विशेषताओं का उल्लेख किया है। जिसको नीचे वैसा ही दिया जा रहा है।

1- "कोई भी भाषा परिवार अपनी मूल विशेषताएँ एकांत शून्य में विकसित नहीं करता। इसलिए किसी भी भाषा परिवार के उदभव और विकास का अध्ययन अन्य भाषा-परिवारों के उदभव और विकास से अलग न करना चाहिए।

2- किसी भी भाषा परिवार की आदि भाषा की कल्पित विशेषताएँ खोजने के स्थान पर उसके निर्माण में अनके भाषा-मूलों के तत्त्वों की प्राप्ति के लिए तैयार रहना चाहिए।

3- एक ही परिवार की भाषाओं के सामान्य तत्त्वों का अध्ययन करते हुए उनमें जो तत्त्व असामान्य हैं, उन पर भी पूरा ध्यान देना चाहिए।

4- प्राचीन लिखित भाषाओं की सामग्री का उपयोग करते समय जहाँ भी समकालीन उपभाषाओं, बोलियों आदि की सामग्री प्राप्त हो, वहाँ उस पर भी ध्यान देना चाहिए। इसी तरह आधुनिक परिनिष्ठित भाषाओं की सामग्री का उपयोग करते हुए उनकी बोलियों के भाषा तत्त्वों पर निरंतर ध्यान देना चाहिए।

5- प्राचीन भाषाओं के अध्ययन में आधुनिक भाषाओं और बोलियों का अध्ययन सहायक होता है। संस्कृत के अध्ययन से यदि हिंदी की विशेषताएँ पहचानी जा सकती हैं, तो हिंदी के अध्ययन से संस्कृत की भी अनेक विशेषताएँ पहचानी जा सकती है।

6- भारत भाषा तत्त्वों का आयात- केंद्र ही नहीं रहा, वह इन तत्त्वों का निर्यात- केंद्र भी रहा है, इस सम्भावना को पहले आमान्य ठहराकर विवेचन आरम्भ न करना चाहिए।

7- आधुनिक या प्राचीन भाषाओं का विश्लेषण करते समय ध्वनियों के यांत्रिक वर्गीकरण के बदले उनकी समग्रता का ध्यान रखकर भाषाओं की ध्वनि प्रकृति का विवेचन उचित है। किसी भी भाषा में प्रयुक्त सभी ध्वनियों का- शब्द में उनकी स्थिति और प्रयोग में उनकी निरंतरता के विचार से- समान महत्त्व नहीं होता। इसलिए भाषाओं की प्रकृति पहचानने के लिए यह विवेक आवश्यक है कि किसी भाषा की व्यवस्था में कौन सी ध्वनियाँ अधिक महत्त्वपूर्ण हैं और कौन सी कम।

8- इसी तरह वाक्य रचना, रूप विकार, शब्द निर्माण प्रक्रिया और व्याकरण की अन्य विशेषताओं को अलग-अलग विभागों में न रखकर उनकी समग्रता में, भाषा की एक ही भाव प्रकृति के अंतर्गत, उन पर विचार करना चाहिए।

9- ध्वनियों की तरह शब्दों में भी विवेक करना उचित है कि शब्द भण्डार का कौन सा भाग मूल है और कौन सा भाग गौण है। किसी भी भाषा के मूल शब्द भण्डार का विश्लेषण किए बिना उसका विवेचन अधूरा रहेगा।

10- भाषा निरंतर परिवर्तनशील और विकासमान है। विरोध और भिन्नता के बिना भाषा न गतिशील हो सकती है न उसका विकास हो सकता है। इसलिए किसी भी भाषा की व्यवस्था में, भाषा के किसी भी स्तर पर- ध्वनि प्रकृति, भाव प्रकृति और शब्द भण्डार, किसी भी विभाग में- विरोधी प्रावृत्तियों और विरोधी तत्त्वों के सह अस्तित्व की सम्भावना के लिए भाषा विज्ञानी को प्रस्तुत रहना चाहिए।"[23]

भाषा विज्ञान से सम्बंधित ऊपर जिन प्रमुख 10 मुद्दों की तरफ रामविलास शर्मा ने ध्यान आकर्षित कराया है उसे नज़र में रखकर ऐतिहासिक भाषा विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान नहीं किया गया है और इसी वजह से गलत निष्कर्ष भी निकाले गये। यही

वजह है कि उन्होंने अपने अध्ययन के समय उपर्युक्त मुद्दों को ध्यान में रखकर भाषा विज्ञान के क्षेत्र में कार्य किया था।

भाषा विज्ञान के क्षेत्र में रामविलास शर्मा मनुष्यता का स्वप्न देख रहे थे। उन्होंने भाषा विज्ञान को एक भारतीय ज़मीन दी है। उनके इस प्रकार के कार्य से भारतीय स्वत्त्व की खोज देखने को मिलती है। उन्होंने अपने अध्ययनों और कार्यों के माध्यम से भाषा विज्ञान को देखने और समझने की एक नई दृष्टि दी है।

संदर्भ-

1. शम्भुनाथ, *रामविलास शर्मा*. साहित्य अकादमी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2011, पृष्ठ – 141
2. वही, पृष्ठ - 141
3. वही, पृष्ठ - 141
4. वही, पृष्ठ - 141 – 142
5. शर्मा, रामविलास. *भाषा और समाज*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, ग्यारहवाँ संस्करण :2017, पृष्ठ – 26
6. वही, पृष्ठ – 27
7. शम्भुनाथ, *रामविलास शर्मा*. साहित्य अकादमी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2011, पृष्ठ – 143
8. शर्मा, रामविलास. *भाषा और समाज*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, ग्यारहवाँ संस्करण :2017, पृष्ठ – 24
9. अमरनाथ, *उद्भावना*, स० अजेय कुमार, दिसंबर 2012, पृष्ठ – 133
10. वही, पृष्ठ – 133
11. शर्मा, रामविलास. *भाषा और समाज*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, ग्यारहवाँ संस्करण :2017, पृष्ठ – 336
12. अमरनाथ, *उद्भावना*, स० अजेय कुमार, दिसंबर 2012, पृष्ठ – 133
13. शर्मा, रामविलास. *भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी (खंड-1)*, राजकमल प्रकाशन, नई, संस्करण : 1989, पृष्ठ – 11
14. शम्भुनाथ, *रामविलास शर्मा*. साहित्य अकादमी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2011, पृष्ठ – 144
15. वही, पृष्ठ – 144
16. वही, पृष्ठ – 146

17. शर्मा, रामविलास. *भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी (खंड-1)*, राजकमल प्रकाशन, नई, संस्करण : 1989, पृष्ठ – 36
18. अमरनाथ. *उद्भावना*, स० अजेय कुमार, दिसंबर 2012, पृष्ठ – 135
19. वही, पृष्ठ – 135
20. शर्मा, रामविलास. *भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी (खंड-1)*, राजकमल प्रकाशन, नई, संस्करण : 1989, पृष्ठ – 22
21. शम्भुनाथ. *रामविलास शर्मा*, साहित्य अकादमी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2011, पृष्ठ – 147
22. वही, पृष्ठ – 148
23. शर्मा, रामविलास. *भाषा और समाज*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, ग्यारहवाँ संस्करण : 2017, पृष्ठ – 24 – 25

अब्दुल हफ़ीज़
शोधार्थी, हिंदी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,
अलीगढ़, उ. प्र.
abdulhafeez917@gmail.com
+919792999127

बदलता कश्मीर

तलाशी (लघुकथा)

२५ जनवरी की सर्द रात थी। लगभग नौ सावा नौ का समय हो रहा था। अमी, अबू, दादी अमी और घर की तीन बच्चियां सोने की तैयारी कर ही रहे थे कि बाहर से ज़ोर-ज़ोर से दरवाज़ा खटखटाने की आवाज़ आई।

कुछ पल के लिए सब डर गए। लेकिन फिर अबू दरवाज़ा खोलने उठे और अमी खिड़की से झांकने लगी और देखा कि कुछ आर्मी वालों की टोली २६ जनवारी के सिलसिले में घर के अंदर तलाशी करने आ रही है।

सहमी हुई अमी सीधा किचन में गई। लाल मिर्च का डब्बा और तेज़ धार का चाकू ले आई और तीनो बेटियों को थमा के बोली छत पे जाके कहीं छुप जाओ।

आर्मी वाले सब से पहले बैठक में तलाशी करने आए, जूंही बूढ़ी दादी को देखा, उनके पैर छू लिए और बिना तलाशी किए लौट गए।

फोज़िया शेख़

शोधार्थी

इस्लामिक यूनिवर्सिटी ऑफ़ साइंस एंड टेक्नोलॉजी

साक्षात्कार खंड

मौन के छंद रचने वाले कवि सतीश विमल के साथ
डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट का संवाद

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि सतीश विमल कश्मीर में हिन्दी की मशाल जलाए हुए हैं। हिन्दी, कश्मीरी और उर्दू भाषाओं में एक साथ लिखते हैं। कवि, आलोचक, अनुवादक और कथाकार के रूप में इनकी अब तक बत्तीस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें इनके हिन्दी के छः कविता संग्रह शामिल हैं। इतिहास, दर्शन और संस्कृति-बोध से सराबोर इनकी रचनाएँ वर्तमान साहित्य जगत में इन्हें एक विलक्षण साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित करती हैं। इनकी रचनाओं का कई भारतीय और अंतर्राष्ट्रीय भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। कश्मीर की ऋषि-सूफ़ी कविता पर इनके शोधकार्य को खूब सराहा गया है। सतीश विमल भारतीय सौंदर्य शास्त्र के जाने माने व्याख्याकार हैं। इनकी काव्य प्रतिभा की विभिन्न विशेषताओं पर देश के प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने लिखा है जिनमें भीष्म साहिनी, डॉ. हरिवंशराय बच्चन, अमृता प्रीतम, डॉ. पांडुरंगा राव, जयंत महापात्र, प्रोफेसर नामवर सिंह, गंगाप्रसाद विमल, प्रोफेसर रहमान राही आदि शामिल हैं। देश की कई प्रसिद्ध साहित्यिक एवं शैक्षिक संस्थाओं और अकादमियों के कई महत्वपूर्ण साहित्यिक प्रोजेक्ट्स में सतीश विमल का महातपूर्ण योगदान रहा है। इन्हें साहित्य अकादेमी, केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्रलाय, केंद्रीय हिन्दी निदेशालय, जम्मू कश्मीर साहित्य-कला अकादेमी, जम्मू कश्मीर के राज्यपाल, प्रसार भारती, अखिल भारतीय उर्दू-हिन्दी संगम, वंदेमातरम समूह आदि कई प्रतिष्ठित संस्थाओं से सम्मानित किया गया है।

प्रश्न १- आप कई विधाओं मे एक साथ लिखते हैं तो आप स्वयं को मुख्यतः क्या मानते हैं: कवि, आलोचक, अनुवादक या एक सूफ़ी ?

उत्तर: बुनियादी तौर पर एक कवि जिसका सूफी मिजाज़ है। जिन अन्य विधाओं में मेरी कलम चलती है, वे सभी इस कवि की कविताओं की ताल पर नृत्य करतीं गोपियाँ हैं। मैं

आलोचना लिखूं, किसी कथा को जन्म दूँ, अनुवाद करूँ या किसी परिचर्चा में भाग लूँ, मेरा कवि मेरा मार्गदर्शन करता है, मेरे साथ रहता है; कविता इंद्रधनुष की छटा है, कवि उन्ही रंगों से बनी सुन्दर सी पेंटिंग।

प्रश्न २- लेखन की प्रेरणा आपको कहाँ से मिलती है? क्या किसी विशेष परिस्थिति, परिवेश की अपेक्षा होती है?

उत्तर: मेरे लिए लेखन मेरी अपनी ही प्रकृति के साथ मेरा प्रेम संबंध है। अतः मुझे लेखन की प्रेरणा अधिकतर मेरे अंतस से ही मिलती है, पर हाँ प्रकृति की बाह्य छटा भी इस रिश्तेदारी को यदा-कदा परवान चढ़ाती है। मैं जब भी अनुराग, प्रयोजन, पीड़ा, हर्ष, खोज, अथवा चित्त की उन्मत्तता की स्थिति में होता हूँ तो लेखन की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। मौन मेरे लिए उतना ही अनिवार्य है जितना मेरा अस्तित्व बोध मेरे लिए, अतः मैं जब लिखता हूँ तो मौन की स्लेट पर।

प्रश्न ३- आपकी दृष्टि में साहित्य क्या है?

उत्तर: जब जीवन का संगीत नम आँखों का स्पर्श और प्यासे होंठों का गीत हो जाता है तो प्रकृति करिश्माई आशीष की अमृत वर्षा करती है, इसी अमृत वर्षा से जन्मी ध्वनियों से जब शब्द आलिंगणबद्द हो जाते हैं तो साहित्य जन्म लेता है। यह साहित्य समय का श्रंगार हो जाता है। ऐसा साहित्य क्षणों में युगों का आनंद और संतुष्टि प्रदान करता है। जीवन के अंधेरे रास्तों में जितनी रोशनी का यह साहित्य संचार कर पाता है, उतनी ही इसकी गुणवत्ता सिद्ध होती है।

प्रश्न ४- आप कवि किसे मानते है? क्या कवि वो है जो अत्यधिक संवेदनशील होता है या वो जो अधिक भावुक होता है?

उत्तर : कवि वह सिद्ध है जो एक अलिखित सफ़ेद पन्ने से मुलाक़ात में व्हाइट बैलन्स के पार देख पाता है और इस करिश्मे को आकार देता है। अकवि भी संवेदनशील और भावुक होता है पर केवल कवि ही स्थानीयता के पार के सफ़र का आनंद ले पाता है और इस अनुभूति में औरों को शरीक करने की क्षमता रखता है।

प्रश्न ५- आप कविता को उर्स मानते है, क्या इसकी व्याख्या करेंगे?

उत्तर: उर्स प्रेम का त्योहार होता है और कविता भी त्योहार ही तो है। उर्स की कल्पना भीतर से जन्म लेती है और बाहर उसी का नृत्य होता है। फिर उस नृत्य में दूसरे भी शरीक हो जाते हैं। कविता इसी तरह के आनंद के उर्स का प्रसाद है जो कवि बांटता है।

प्रश्न ६- आपके लेखन के मूल में प्रेम है या वेदना?

उत्तर: प्रेम और वेदना अलग हैं ही कहाँ! यह चित और अन्तश्चेतना के शोच के साधन हैं। मेरे लिए प्रेम और वेदना एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

प्रश्न ७- क्या लेखन हेतु पढ़ना आवश्यक है या जीवन के कटु अनुभव?

उत्तर: पढ़ना और जीवन के अनुभवों से सीखना या जानना खुद को बड़े फ़लक तक ले जाने के लिए बेहद ज़रूरी है, पर हाँ।। यहाँ से केवल खाम-माल मिल सकता है जिसे पुख्ता करने के लिए अपनी चेतन की भट्टी में तापना पड़ता है। साहित्य लेखन अखबारी लेखन से भिन्न है। समय के गर्भ से छूटते ही साहित्य अकाल-मूरत हो जाता है और जो लेखन समय के गरभ से छूट कर भी समय की ही क़ैद में ही घुटता है, वह साहित्य नहीं,समय का रिकार्ड-बुक बन कर रह जाता है।

प्रश्न ८- आपका बहुचर्चित कविता संग्रह *'ठूंठ की छाया'* सन् 2012 में प्रकाशित हुआ था, इस ठूंठ की छाया में आप किसे पाते है?

उत्तर: स्वयं को....कवि और कवि के भीतर और बाहर के अस्तित्व को, जिसमें मानव-इतिहास के कई अध्याय ज़िंदा हैं। देखें तो अपने काल के चंद क्षणों में अजय रहे चक्रवर्ती राज्य हों अथवा दरिद्रता के झोंपड़ों में घुट कर समाप्त हुए सपने हों.... दोनों इसी ठूंठ की छाया हैं जो अपने काल के इन अल्प-क्षणों के बाहर कोई सय न कर पाये। 'ठूंठ की छाया' एक आईना है, जिसमें मानव के अहंकार का बौनापन दिख जाता है।

प्रश्न ९- क्या 'खोये हुए पृष्ठ' विस्थापन की त्रासदी में खो गए थे?

उत्तर: मानव चेतना की विस्मृति में खो गए थे यह पृष्ट। जीवन को जब यंत्रों और संकेतों में सीमित किया गया, तो उत्सवों का मर जाना स्वाभाविक था। इसी मृत्यु को जब इनाम की संज्ञा मिली, तो आनंद का खोजना स्वाभाविक था। युगों-युगों से पाप और पुण्य के भ्रमजाल में जब ज्ञान को फंसाया गया तो विवेक को ग्रहणग्रस्त होना ही था....ऐसी

परस्थिति में किताब की गुलामी में स्वतंत्र अभिलेख नज़रन्दाज़ होने का एक लंबा दौर चला.....इसी दौर में खो गए थे यह पृष्ठ।

प्रश्न १०- 'विनाश का विजेता' आप किसे मानते है? क्या यह राजनीति है या कट्टर धर्मिता या इनमें से कोई नहीं?

उत्तर: 'विनाश का विजेता' वही है जो जीवन को टुकड़ों में नहीं बांटता। वही जो वाद, विचार, शिक्षा की चादर से प्रकृति को नहीं ढकता; स्वछंद जीवन को अपनी समस्तता के साथ जीने वाला ही विनाश का विजेता है। वही जो औरों के कहे को ही सत्य नहीं मानता; अपना सत्य खोजने वाला और उस सत्य के आनंद में उत्थान पाने वाला ही 'विनाश का विजेता' है। यह विजेता पहले का बना-बनाया हर ढांचा ध्वस्त करता है, हर उस तत्व का विनाश करता है जो उसके अपने चैतन्य से जुड़ा नहीं है और फिर अपने लिए सब कुछ बुनियाद से कलश तक स्वतः निर्मित करता है।

प्रश्न ११- 'निःशब्द चीख के शिखर पर' कविता संग्रह में किस मौन-कोलाहल का अंकन है?

उत्तर: लाओत्से ने कहा था कि जो कहा जा सकता है, वह सत्य नहीं हो सकता और सत्य वही है जो कहा नहीं जा सकता। नि:शब्द चीख के शिखर पर ही सत्य का संगीत सुनाई देता है। यह वह मुक़ाम है जहां कहने सुनने की हद पीछे रह जाती है और मौन ही संवाद करता है, मौन ही दृष्टिगोचर होता है, मौन का ही श्रवण होता है। निष्क्रियता इसी शिखर पर क्रिया का फल देती है।

प्रश्न १२ 'नृत्य मौन का' आपकी बहुचर्चित काव्य-रचना है, मौन में मनुष्य कब नृत्य करता है?

उत्तर: मौन जब सद्ध जाता है तो प्रकृति अपने भीतर समस्त छटाओं के साथ दिखाई पड़ती है। जैसे यह ब्रह्मांड प्रति-क्षण विस्तार पाता है, उसी प्रकार प्रकृति की छटाएं भी प्रतिपल विस्तृत होती जाती हैं। विस्तार की यह क्रिया परमानन्द की अवस्था को जन्म देती है। इस अवस्था में मौन का साधक अपने साथ और विस्तृत होती प्रकृति के तत्वों

के साथ नृत्य में रम जाता है। इसी नृत्य से जन्म लेता है एक ऐसा संतोष जो खुशबू की तरह चहुं और फैल जाता है।

प्रश्न १३- आपके विचार में साहित्य में समकालीनता से क्या अभिप्राय है?

उत्तर: समय एक रेखीय नहीं है अपितु समय चक्राकार है। आदि से लेकर अनंत तक यह चक्र गतिशील है। हम इसी चक्र के एक अल्प भाग में जी रहे हैं, गतिमान हैं। हमारा समय बीते हुए कल और आने वाले कल से किसी भी सूरत पृथक नहीं है। हम जितना आज में हैं, उतना ही बीते कल से और आने वाले कल से जुड़े हैं। पर हम वर्तमान शिक्षा दृष्टि के चलते हर चीज़ को टुकड़ों में देखने के आदी हो गये हैं, इसी लिए हम ने समय को भी खंडों में बाँट कर देखने की प्रवृति को बढ़ावा दिया और काल-विभाजन की इस समझ के परिणाम-स्वरूप हम दृष्टि-विभाजन के शाप से ग्रसित हो गए। साहित्य आज का हो, बीते हुए कल का हो अथवा आने वाले कल का, यह हर क्षण का साहित्य है और हर समय प्रभावी और प्रासंगिक है। आज का साहित्य कल और कल के बीच का पल है, अतः इसे कैलेंडर के विशेष खांचों में क़ैद नहीं किया जा सकता।

प्रश्न १४- एक लेखक और अनुवादक आपस में कितना दूर होते है?

उत्तर: अनुवाद दो विभिन्न भाषाई इलाक़ों के बीच एक पुल है। यह पुल लेखक को नये अनजान पाठक वर्ग से परिचित कराता है। एक किनारे से पुल जितना दूर या पास होता है, उतनी ही दूरी या निकटता लेखक और उसके अनुवादक के बीच होती है। लेखक की तुलना में अनुवादक अधिक निष्काम कर्म करता है, दिखता नहीं है जबकि लेखक अपनी रचना के अनुवाद में भी विद्यमान रहता है।

प्रश्न १५- क्या लेखक निष्पक्ष होना चाहिए परन्तु मनुष्य का मनुष्य होना ही किसी के पक्ष में होना होता है। आप क्या समझते है?

उत्तर: पक्ष और निष्पक्षता का बोझ क्यों डालें कला पर। कला की नाज़ुकी को रहने दिया जाए। कोमल और मोहक गुलाब के फूल तेज़ हवाओं, बारिशों, गर्मी की तपिश और कांटों के बीच पलटे हुए खिलते हैं। देखने वाला, सुगंध महसूस करने वाला केवल सुंदरता के भांति-भांति के पैमानों के हिसाब से सराबोर होता है, वह नहीं सोचता तेज़

हवाएं, बारिशें, धूप की तपिश और कांटे। प्रकृति जिस तरह स्वछंदता की पर्याय है, उसी तरह स्वछंदता का स्वरूप है साहित्य का। लेखक प्रकृतिदूत है, वह पक्ष का बोझ क्यों ढोये।

प्रश्न १५- एक अंतिम प्रश्न, चूँकि कश्मीर एक हिंदीतर क्षेत्र है, आप कश्मीर में हिंदी भाषा तथा साहित्य की क्या स्थिति देखते है?

उत्तर: कश्मीर में तीन दशकों से अधिक समय तक संकीर्णता का और आतंक का राज रहा। इस बीच कई तरह के अत्याचार हुए। समन्वय और सौहार्द का गल घोंटा गया। हिन्दी भी एक बड़ी आबादी के साथ घाटी से निष्कासित की गई। प्रकृति का नियम है कि किसी भी विपरीत परिस्थिति में किसी भी चीज़ का समूल नाश असंभव है। हिन्दी विरोधी माहौल के बीच भी हिन्दी की कुछ गिनी चुनीं आवाज़ें कश्मीर में हिन्दी की अलख जगाती रहीं। और अब जब हालात बदले हैं, तो हिन्दी के पुनरुत्थान की उम्मीद भी जग गई है। आप जैसे प्रतिभावान हिन्दी सृजक और कितने ही युवाओं को प्रेरित कर रहे हैं। यद्यपि वर्तमान अभी उतना उज्ज्वल नहीं दिख रहा, पर घाटी में हिन्दी के भविष्य की आशा से किसी को इनकार भी नहीं होगा।

विमर्श खंड

समय सरगम में वृद्धावस्था विमर्श

डा. शगुफ़्ता नियाज़

अस्तित्ववादी दार्शनिक सीमोन दा बुआ की शोध कृति 'ला विएलेस्से' (फ्रेंच) महत्त्वपूर्ण रचना है। इसका अंग्रेज़ी अनुवाद ओल्ड ऐज (1977) में आया। यह कृति वस्तुतः सीमोन की भविष्योंमुखी विश्वदृष्टि का प्रमाण है और वृद्धावस्था विमर्श की गीता। इस कृति के प्रकाशित होते ही दार्शनिक और सामाजिक हलकों में वृद्धावस्था पर बहस-सी छिड़ गई।[1] विभिन्न समाजों में वृद्धावस्था संबंधित रूढ़ियों और वृद्धों की दशा तथा उनके प्रति व्यवहार का अलग-अलग दृष्टियों से सीमोन दा बुआ ने अध्ययन किया है। जहाँ उनके आशीर्वाद के साथ प्रातःकाल की शुरुआत की जाती है वहीं दूसरी तरफ उन्हें बोझ भी समझा जा रहा था। समाज, साहित्य और संस्कृति में सदा उपस्थित रहने के बावजूद वृद्धों की अवस्थिति केंद्र की अपेक्षा परिधि पर ही अधिक रही है। जब बुढ़ापा आने लगता है तो उसका अर्थ ही है कि व्यक्ति का केन्द्र से उखड़कर परिधि की ओर जाना।[2]

"वृद्धावस्था मृत्यु की तैयारी का समय है।" (ओल्ड ऐज)

साहित्य में वृद्धावस्था से जुड़े प्रश्नों पर लम्बे समय से विचार किया जाता रहा है लेकिन इस समस्या का जो रूप आज हमारे सामने है वह पहले कभी ऐसा न था। आज हमारी चिंता का विषय विशाल वृद्धजन समुदाय के जीवन को सुखमय बनाने से संबंधित है। ''व्यक्ति सेवानिवृत्ति के बाद किसी भी सकारात्मक कार्यों में व्यस्त रहे अन्यथा वो आलस्य व उदासी के घेरे में आ जाएगा।"

हिन्दी साहित्य में वृद्ध जीवन को केंद्र में रखकर कई उपन्यासों की रचना की गयी है। जैसे- पंकज बिष्ट-उस चिड़िया का नाम, कृष्णा सोबती-समय सरगम, श्रीलाल शुक्ल-बिस्रामपुर का संत, ममता कालिया-दौड़, चित्रा मुद्गल-गिलिगडु, हृदयेश-चार दरवेश, रवीन्द्र वर्मा-पत्थर ऊपर पानी, अज्ञेय-अपने अपने अजनबी, अमरकांत-सुन्नर पांडे की पतोह, काशीनाथ सिंह-रेहन पर रग्घू, निर्मल वर्मा-अंतिम अरण्य, रमेशचंद्र शाह-सफ़ेद पर्दे पर, रामधारी सिंह दिवाकर-दाखिल खारिज, गोविंद मिश्र-शाम की

झिलमिल, सूरज सिंह नेगी-रिश्तों की आँच, नियति चक्र और वसीयत, कृष्ण बलदेव वैद-दूसरा न कोई, पंकज कपूर-दोपहरी इत्यादि।

हिंदी उपन्यास साहित्य में कई लेखकों ने अपने-अपने उपन्यासों में वृद्धावस्था के अंतर्गत राग-विराग, बेरुख़ी, अलगावबोध, विच्छिन्नता, अकेलेपन का उल्लेख किया है। वृद्धों को अपने द्वारा संचित सम्पत्ति एवं परिवार से व्यक्ति का लगाव जीवन की अन्तिम साँस तक लगा रहता है। बदलते माहौल एवं परिवार के लोगों की अनदेखी से वृद्ध हो चुके माता-पिता को अपने परिवार के प्रति मोहभंग पैदा होने लगता है जिस परिवार में कभी उसका आदेश चला करता था आज उसी परिवार से वो बेगाना-सा होने लगा है। घर के किसी कोने में अपने जीवन के बचे हुए दिनों को काट रहा होता है। कभी-कभी तो वृद्ध अपने बच्चों की कटु बातों से आहत होकर आत्महत्या कर लेते हैं या घर छोड़ने तक का फैसला कर लेते हैं।

वृद्धावस्था का औपचारिक विश्लेषण सबसे पहले 1532 में मोहम्मद इब्ने युसूफ अल-हरावी द्वारा अपनी पुस्तक ऐनुल हयात में किया गया था, जिसे मध्यकालीन चिकित्सा और विज्ञान की इब्ने सिना अकादमी द्वारा प्रकाशित किया गया था। यह पुस्तक बुढ़ापे और इससे संबंधित मुद्दों पर ही आधारित है। ऐनुल हयात की मूल पांडुलिपि 1532 में लेखक मोहम्मद इब्ने यूसुफ अल-हरावी द्वारा लिखी गई थी। दुनिया के विभिन्न पुस्तकालयों में इस पुरानी पांडुलिपि की प्रतियाँ मौजूद होने की बात कही जाती है। इन चारों प्रतिलिपियों का मिलान करने के बाद, 2007 में हकीम सैयद ज़िल्लुर रहमान ने पाण्डुलिपि का संपादन और अनुवाद किया। इस पुस्तक से आप जान सकते हैं कि किस प्रकार आश्चर्यजनक ढंग से 500 साल पहले ही लेखक ने आहार, पर्यावरण और वृद्धावस्था में घरेलू स्थितियों सहित सभी प्रकार के व्यवहार और जीवन शैली के कारकों पर चर्चा की है।[3]

व्यास सम्मान 2007 प्राप्त समय सरगम अन्तरराष्ट्रीय फलक का उपन्यास है। कृष्णा सोबती ने समय सरगम में वृद्धों की एक नई व अनोखी दुनिया सर्जित की है। आरण्या उपन्यास की नायिका है जो एक वृद्धा स्त्री जो उम्र को पीछे कर उत्साह से भरपूर जीवन बिता रही है। ''हम हैं तो समय है। हमारी चेतना में संचित है, हमारा काल आयाम है.... आगे बढ़कर क्षण को पकड़ लो जो तुम्हारा है। (पृ.17) समय सरगम यदि

कभी यह अनुभव भी हुआ तो आरण्या की उम्र बढ़ रही है तो उसे नए ढंग से देखती है। (फ्लैप से) क्या यह झुर्रियोंवाला मुखड़ा तुम्हारा नहीं है? है तो! पर ऐसा होने से क्या हुआ। हम तो हर पल बड़े होते रहते हैं न। हाँ जान रखो इस चेहरे पर सताई हुई रेखाएं नहीं। समय के साथ उगी पकी है। अपने को खुद जिया है।

बींसवी और इक्कीसवीं सदी के दो किनारों के अपने में समाहित किए 'समय सरगम' जीवननुभवों की समृद्धि, तटस्थता तथा सामाजिक परिवर्तन से उभरा उपजा, एक अनूठा उपन्यास है। यहाँ जीवन मूल्य है जो मानवीय विकास को सार्थकता प्रदान करते हैं।

हम हैं तो समय है.... समय तो हमारे बाहर भी है। वही है जो हमें आंतकित करता है, पर इस समय ऐसे बरसाती दिन में यह दुविधा क्यों और नया आलाप भी क्यों..... आगे बढ़कर क्षण को पकड़ लो जो तुम्हारा है। यह शाम, यह क्षण, यह बारिश लपककर हथेली में समेट लो एक बार चूकी तो हमेशा के लिए खिसक जाएगी।

जानती हूँ धावल्य और धुंधल का फ़र्क वक़्त है कुछ पुराना भी कुछ नया भी। इशान और आरण्या दोनों बुज़ुर्ग परस्पर विरोधी विश्वास और निजी आस्थाओं के बावजूद साथ होने के लिए जिस समाज की रचना करते हैं वहाँ दोनों की आदतें सर्वथा भिन्न हैं। एक जल्दी सोता, जल्दी उठता है। दूसरा देर से सोता और देर से उठता है। एक आध्यात्मिक है, दूसरा नहीं फिर भी दोनों संग रहने का निश्चय करते हैं। दोंनों एक-दूसरे के व्यक्तिव का आदर करते हैं। जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण को इन पंक्तियों में देखा जा सकता है।

हवा पी रही हूँ। आत्मा तक खींच रही हूँ आक्सीज़न! खुश हूँ कि जीवित हूँ। अपने साथ के तो कब के जा चुके। जब तक हो आराम करो, मौसम का सुख लो, ऐसी हवाएँ कहीं और नहीं चाँद पर भी नहीं।

दोनों एक-दूसरे के साथ टहलने जाते हैं पर एक की रफ़्तार धीरी है, एक की तेज़ पर कोई पलट नहीं भला तुलना क्यों अपने-अपने कदमों की रफ़्तार है। लेखिका के लिए मनुष्य सर्वोपरि है और शरीर है तो बुढ़ापा आयेगा ही परन्तु आरण्या उसका रोना नहीं रोती वह जीवन को बहुत सचेत होकर जीती है।

अपने लिए जो नियम उसने बनाए निःसन्देह वृद्धों को नवीन जीवन प्रेरणा देंगे। ‘‘पुराने शरीर में कुछ भी ख़ुराफ़ात उठ सकती है, काजू से परहेज़ करना ही अच्छा है, इसमें हाई कैलेस्ट्रोल होता है। आसान व्यायाम देह को सजग रखते है।"

पाँव तले उखड़े पत्थर का खटका लगा। नीचे से टाइल उखड़ी हुई थी संभलकर। गिरेगी। कम पुरानी नहीं हो। दुर्घटना कभी भी हो सकती है।...याद आया मेडिकल इंश्योरेंस वाला कागज़, संभालकर रखा है न। उम्र के इस छोर पर पहुँच कर संचारिणी सिकुड़ने लगती हैं, शिथल पड़ जाती हैं, इसीलिए किसी न किसी तरह की हरकत ज़रूर है। रोज़ की सैर तो और भी! (पृ. 10-12)

वृद्धावस्था में स्वास्थ्य को नज़रअन्दाज़ आरण्या को सजग दिखाया है- लेखिका ने स्वास्थ्य की फिक्र ईशान का आरण्या को समझाना और आरण्या का जल्द ही समझ लेना- “जूते बचाने के लिए सरदी पकड़ने मे भी भला क्या तुक! एंटिबायटिक्स तक खाने पड़ सकते हैं..... मतलब ये निकला गीली घास पर चलना मुझ जैसे पुराने नागरिक के लिए ठीक नहीं।”

उम्र के बढ़ने पर भी आरण्या में एक नया जोश और उमंग है- सारी बुढ़ापे की चिंताएँ जानते-समझते हुए उन्हें अपने ऊपर ढोती नहीं है। यथा- ‘‘ऐसा न समझ ले कि ग्रे तक पहुँच ही गई हूँ, जीवितों की कई ऐसी पवित्र इच्छाएँ होती हैं जो इस गे्र के बाद भी बनी रहती है।”

...निशब्द है समय पर इसमें भी बहुत कुछ धड़क रहा है और उम्र वह बकरी बनी चर रही है, धीरे-धीरे चरने दो। उस ओर मत देखो। ईशान और आरण्या दोनों अपनी-अपनी जीवन की प्राथमिकताएँ देते हुए चलते हैं दोनों एक केन्द्र पर आकर मिलते हैं। एक निश्चित समय पे दोनों में न पुरानी स्मृतियाँ, न उलाहने, न स्पर्धा, न अकामकता न नम्रता सिर्फ़ साथ-साथ चल रहे हम दो हैं, चलना अच्छा है, डाक्टर भी यही कहते हैं।

वृद्धावस्था में लोग अपनों की सानिध्य प्रेम समीपता चाहते हैं पर आरण्या का दृष्टिकोण थोड़ा भिन्न है। ‘‘परिवार की सुगंध इतनी भी नहीं सुहाती कि संगीत की लय-ताल की तरह हर क्षण दिल तक पहुँचती रहे। वह स्व में ही प्रसन्न और आशावादी है-

मुझे मेरा अपनापन निरंतरता का एहसास देता है। गुज़रते समय के साथ दोनों परिपक्वता के साथ बैठकर प्रत्येक क्षण को जीते हैं- समय देह को कुतरता नहीं- उसमें रसता है। सारी धूल, मिट्टी, गर्दा, ग़ुबार के साथ।... जो भी प्रतिफलित है सिराजित है, अक्षरों की क्यारी में उसी को अंकित करना चाहती हूँ। (पृ. 57)

जीवन अन्त की ओर बढ़ रहा है पर जीविका उत्कट है, आरण्या को ज्ञान की भट्टी में पक्की हुई शब्दावली देखिए कृष्णा सोबती की भाषा शैली की ज़बरदस्त पकड़ दिखाई देती है- जीने के लिए देह को परिवर्तन के पंखों पर उड़ना होता है। अपनी साँस के साथ खींच रहे हम हाइड्रोजन के कण, आक्सीज़न, कार्बन, नाईट्रोजन, आमाशय, हृदय, फेफड़े दिमाग़ हवा में विलीन हो रहें हैं।... एक मास में त्वचा बदल जाती है, उदर की तिल्ली हर पाँच दिन में लिवर छः सप्ताह में पूरा कंकाल इस काया का उस पर विलक्षण यह लगे कि कुछ भी बदला नहीं जबकि 95 प्रतिशत शरीर के अणु बदल जाते हैं। प्रतिस्थापित होते हैं और शरीर को नवीभूत करते हैं।

समय-सरगम उपन्यास में दो वृद्ध और आए हैं। दम्यंती जिनकी जीवन शैली को देखकर आरण्या दुखी है पर वो ऐसे लोगों से मिलने से बचना चाहती हैं- दामयन्ती का दर्द इन शब्दों में व्यक्त हुआ है-''मैं अपने कमरे में अकेले पड़ी रहती हूँ, बच्चे बिना इजाज़त मेरा सामान इधर-उधर करते रहते हैं। आरण्या में बहुत दुखी हूँ आश्रम गई तो माधो को धमकाते रहे कि बताओ लॉकर की चाबी कहाँ रखती हैं..... बच्चों की ऐसी हरकतों से मेरा धीरज समाप्त हो रहा है। फ़्लैट के कागज़ माँग रहा है बेटा मैं ड्राइंग रूप में अपने मेहमानों को नहीं बिठा सकती।.... मैं बेजान काठ की तरह देखी जाती हूँ।

आरण्या ये सब देखकर द्रवित हो अपने को सुरक्षित अनुभव करती है कि अच्छा है वह इन बंधनों में नहीं नए बच्चों का सामना करने की हिम्मत भी है क्या? क्या उसके अस्तित्व और व्यक्तित्व के सूत्र अब भी पिता तथा पुत्र के हाथ में हैं। बच्चे आजकल वृद्धों को वृद्धाश्रम में डाल रहे हैं, ऐसे में एक ऐसी छत जिसमें वह सुख की साँस ले बहुत ज़रूरी है।''आवास ही मानसिक विकास और नागरिक अध्याय का मूल है, आवास की सुविधा ही नागरिक जीवन का आधार है।'' आरण्या अपना फ़्लैट बेचने के बाद ईशान के साथ रहने का एक बड़ा फैसला लेती है-

जीना बैंक का अकांउट नं0 नहीं, जिसका कुल जोड़ कुछ आकड़ों में हो, हम वहाँ सोचते थे, कहाँ पहुँच गए कहाँ मालूम था कि पतझर के इस मौसम में हम लोग मिल जाएंगे, पुराने परिचितों की तरह नहीं नए मित्रों की तरह... जितना जल तुम्हारे हमारे घट में शेष में है, वह संझाते समय के लिए कम नहीं, क्या न हम एक-दूसरे के पास रहे।"

आरण्या ओर ईशान की आध्यात्मिक मान्यताएँ अलग हैं। ईशान परम्परावादी पर आरण्य उससे अलग परन्तु दोनों में केवल विचारों का आवागमन होता है न लड़ाई न झगड़ा, न कलह।

किसी दैवी शक्ति में तो विश्वास करती हैं।.... अपने विषय में यह कोई नहीं कह सकता कि मैं नहीं हूँ। जब तक हूँ-हूँ। परमात्मा तो स्वंयसिद्ध है, मैं अपने विश्वास की तुलना कैसे करूँ। उन्हीं का एक अंश मुझमें भी होगा। संबंध अस्तित्व कोई भी हो पवित्रता सुरक्षित रहनी चाहिए।

ईश्वर और दर्शन की गम्भीर अभिव्यंजना लेखिका ने समय सरगम की आरण्या और ईशान के माध्यम से समाज तक पहुँचाई है। ''ईश्वर के नियम सत्य और पूर्ण है। इसी से उसमें परिवर्तन नहीं होता..... व्यक्ति का प्राणांत होते ही वह समय या काल के बाहर हो जाता है। जितना भी जान सका हूँ तुम धार्मिक वृत्तियों की अनुगामी नहीं फिर भी मानव जीवन से जुड़ी इन प्रक्रियाओं को समझती हो। सत, चित और आनन्द की व्याख्या जिसमें सभी के कल्याण का अवसर हो वृद्धों का विशेष तौर पर लेखिका का यही प्रतिपाध है जिसमें वह पूर्णतया सफ़ल हुई है। सत की इच्छा है वह सदा प्रतिष्ठित रहे चित्त की इच्छा है कि वह सब कुछ मान सके जो उसे जानना चाहिए आनंद की इच्छा है कि वह हरियाता रहे सुखी रहे, बना रहे ।

जीवन का अंतिम सत्य जिस मृत्यु पर सभी सोचते है, पर कोई बात नहीं करता। कृष्ण सोबती ने आरण्या द्वारा सहज ही कहलवाया है कि- ''संसार का वही अतिंम दृश्य जिसे जीते जी अपनी आँखों से कोई नहीं देखता और सब कोई देखता है, कैसी है ये मुद्रा। खेल ख़त्म हो जाने से पहले कोई ढूँढ रहा है अपने को उसी राह पर।"

कृष्णा सोबती ने समय सरगम में वृद्ध विमर्श के लिए नए सकारात्मक आयाम खोज दिए हैं। ज़िन्दगी को देखने का एक नया नज़रिया दिया है पर हो रहा है पुर्नजन्म इन दिनों भी। काग़ज़ों को फाड़कर उम्र की भविष्य वाणी, क्या इस अनुभव के बीच से आप भी गुज़रे हैं।... हाँ कभी पुराने पत्र, कभी पुराने हिसाब, कैलेडर और डायरिया। अपनी कहूँ तो कागजों के साथ-सथ स्मृतियां भी शायद इसे ही निर्वाण कहते होंगे।

'समय सरगम'जिए हुए अनुभव की तटस्थता और सामाजिक परिवर्तनों से उभरा उपजा एक अनुठा उपन्यास है। संयुक्त परिवारों के भीतर बाहर में वरिष्ठों की उपेक्षा दिखाते हुए आरण्या किस प्रकार अपनी स्वाधीनता, आदर बचाए हुए जी रही है। जन्म से किशोरवस्था और वृद्धावस्था के तीनों सुरों को बांधता है यह उपन्यास 'समय सरगम'।

पहला स्वर आदिम। जन्म स्वर। षडज तरूणाई स्वर निषाद इस मानवीय आख्यान का अन्तिम स्वर बचपन, यौवन और यह पकते हुए मौसम का सुर निषाद। जब तक इन्हें गुँथे रहने दो तभी है सरगम।" (समय सरगम)

समय सरगम वर्तमान से आगे बढ़कर भविष्य की चिंता भी करता है समय का राग अनेक आशाओं उत्कंठाओं अभिलाषाओं सुरलिपि आयु अनुरूप राग छेड़ती रहती है। तार सरतक के बाद मंद्र सप्तक पे आना अनुभव से भरे जीवन का गुरूतम सच होता है जिस समय लोग अपने आपको थका मान लेते हैं लेखिका ने यही समय आयु का सत्य बताया है और मानव के सामाजिक जीवन का भी 'समय सरगम'वृद्धावस्था विर्मश के अनेक रूपों को हमारे सामने लाता है सार्थक और सकारात्मक रूप में, यही इस उपन्यास की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

संदर्भ-

1. प्रसाद, चंद्रमौलेश्वर. *वृद्धावस्था विमर्श*, परिलेख प्रकाशक, नज़ीबाबाद, पृ. 9
2. वही, पृ. 9-10
3. नियाज़, शगुफ्ता. *वृद्ध विमर्श: कथा आलोचना*, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2021, दो शब्द
4. वही

सहायक ग्रंथ

सोबती, कृष्णा. *समय सरगम*

-डॉ. शगुफ़्ता नियाज़
असि. प्रोफेसर हिंदी,
वीमेंस कालेज,
ए.एम.यू, अलीगढ़

‘मैं पायल’ उपन्यास में वर्णित किन्नर जीवन का आत्मसंघर्ष

-विकास साव एवं राहुल महतो

सारांश

मैं पायल’ उपन्यास कथाकार श्री महेन्द्र भीष्म जी द्वारा रचित किन्नर जीवन पर आधारित एक आत्मकथात्मक औपन्यासिक कृति है, जो किन्नर गुरु पायल सिंह के जीवन संघर्ष पर केंद्रित है। उपन्यास में महेन्द्र भीष्म ने स्वयं को पायल के स्थान पर रखकर उसकी पीड़ा को आत्मसात कर पन्नों पर चित्रित किया है। प्रत्येक किन्नर का अपना एक अतीत होता है, उसका स्वयं का भोगा हुआ संघर्ष होता है जो उसके जीवन का एक कटु सत्य है। इस उपन्यास में भीष्म जी ने पायल उर्फ जुगनी के माध्यम से प्रत्येक किन्नर की पीड़ा को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। पारिवारिक विस्थापन का दंश, सामाजिक संवेदनहीनता, व्यक्ति में छिपी कलुषित प्रवृत्तियां, भूख की त्रासदी, किन्नरों के प्रति दंश आदि समस्याओं का चित्रण लेखक ने हमारे सामने रखा है, जिसमें एक ममतामई माँ की संवेदना भी है। यह उपन्यास पायल सिंह से किन्नर गुरु पायल सिंह बनने की एक आत्मकथा है, जो आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई है।

मूल शब्द:– किन्नर, आत्मसंघर्ष, समाज, समस्या आदि।

मानव समाज का गठन दो लिंगों पर आधारित है स्त्री और पुरुष। इन दोनों से हम अपना पहला समाज निर्मित करते हैं परंतु इनके इतर भी एक दूसरा समाज है वह है ‘किन्नरों का समाज’। किन्नर अर्थात हिजड़ा, खुसरो, छक्का, उभयलिंगी, मंगलमुखी आदि कई नामों से संबोधित किया जाता है। किन्नर जो न तो स्त्री होते हैं और न ही पुरुष अर्थात इन्हें ‘तृतीय लिंग’ की संज्ञा दी गई है। हमारे समाज में आम लोगों के प्रति हमारी जो संवेदना होती है वह इनके (किन्नरों) प्रति दिखाई नहीं पड़ती बल्कि इनके प्रति एक अलग ही दृष्टि रखते हैं जैसे वे किसी दूसरी दुनिया के हो। शारीरिक और लैंगिक विकृति के कारण समाज इन्हें अश्लीलता के चश्मे से देखता है। किन्नर कहलाना किसी को भी अच्छा नहीं लगता और यदि किन्नर को हिजड़ा कहो तो उसे गाली नहीं लगती हो परंतु उसके मन में एक टीस ज़रूर होती है कि “आखिर भगवान ने उन्हें ऐसा क्यों बनाया?”

'किन्नर' वैसे तो यह शब्द हिमालय के आसपास रहने वाले जनजातियों के लिए प्रयुक्त होता रहा है किंतु किन्नरों का अस्तित्व तो आदिकाल से ही रहा है। रामायण और महाभारत में भी इनकी चर्चा शिखंडी और बृहन्नला के रूप में हुई है तथा अर्जुन ने अपने अज्ञातवास का समय 'बृहन्नला' के नाम से व्यतीत किया। भले यह किसी भी धर्म से आए हो, पर इन सबका एक ही समाज होता है परंतु आज कहा जा सकता है कि किन्नर समाज द्वारा परित्यक्त एवं उपेक्षित वर्ग है। समाज में आज भी इन्हें हाशिए पर रखा जाता है। इनका जीवन उपहास और तिरस्कार का विषय बनता जा रहा है। आज लोगों से इनके अस्तित्व को लेकर वास्तविकता कम और अफवाहें अधिक सुनने को मिलती हैं। ऐसा कहा जाता है कि अगर यह किसी को दुआ दे तो वह अवश्य पूरी होती है और यदि इसके विपरीत बद्दुआ दे तो उनकी दुर्दशा होती है किंतु यह गलत है किन्नर कभी किसी को अभिशाप नहीं देते, वह केवल आशीष देना जानते हैं।

संघर्ष एक सामाजिक प्रक्रिया है, जो जीवन को गति देती है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में संघर्ष की अपनी भूमिका होती है। 'मैं पायल' उपन्यास कथाकार श्री महेन्द्र भीष्म जी द्वारा रचित किन्नर जीवन पर आधारित एक आत्मकथात्मक औपन्यासिक कृति है, जो किन्नर गुरु पायल सिंह के जीवन संघर्ष पर केंद्रित है। उपन्यास में महेन्द्र भीष्म ने स्वयं को पायल के स्थान पर रखकर उसकी पीड़ा को आत्मसात कर पन्नों पर चित्रित किया है। प्रत्येक किन्नर का अपना एक अतीत होता है, उसका स्वयं का भोगा हुआ संघर्ष होता है जो उसके जीवन का एक कटु सत्य है। इस उपन्यास में भीष्म जी ने पायल उर्फ जुगनी के माध्यम से प्रत्येक किन्नर की पीड़ा को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। पारिवारिक विस्थापन का दंश, सामाजिक संवेदनहीनता, व्यक्ति में छिपी कलुषित प्रवृत्तियां, भूख की त्रासदी, किन्नरों के प्रति दंश आदि समस्याओं का चित्रण लेखक ने हमारे सामने रखा है, जिसमें एक ममतामई माँ की संवेदना भी है। यह उपन्यास पायल सिंह से किन्नर गुरु पायल सिंह बनने की एक आत्मकथा है, जो आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई है।

हिंदी साहित्य अपने जन्म से लेकर वर्तमान समय तक विभिन्न विषयों को प्रवाहित करता रहा है, जिसमें आधुनिकता, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि नई-नई विचारधाराओं को संपन्न बनाने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाई गई है। उसी प्रकार किन्नर विमर्श भी आज का एक ज्वलंतशील विमर्श है। साहित्य में विधा की दृष्टि से उपन्यास का क्षेत्र काफी विस्तृत है जिसमें समाज से संबंधित अनेक विषयों को उठाया गया। परंतु जिज्ञासा पूर्ति के उद्देश्य से जब मैंने 'थर्ड जेंडर' से जुड़े उपन्यासों को ढूँढना प्रारंभ किया तो पाया कि इस विषय पर कुछ गिनी-चुनी योग्य रचनाएँ ही उपलब्ध हैं। 'यमदीप'(2002) उपन्यास किन्नर जीवन पर आधारित सबसे पहला उपन्यास है। इसके अतिरिक्त 'तीसरी ताली', 'किन्नर कथा'(2010), 'ग़ुलाम मंडी', 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा' 'जिंदगी 50-50' आदि उपन्यास तृतीय लिंगी समाज का हाल बयान करते हैं। 21 वीं सदी के इन प्रतिनिधि उपन्यासों में महेन्द्र भीष्म का 'मैं पायल' उपन्यास भी किन्नर जीवन की त्रासदी, अपमान, पीड़ा, शोषण, अवहेलना आदि विषयों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है।

'मैं पायल....' उपन्यास सामाजिक समरसता से कहीं अधिक समाज में किन्नरों के प्रति व्याप्त उस हेय दृष्टि को बदलने का प्रयास है जो लोगों के मन-मस्तिष्क में घर कर गई है। यह उपन्यास यातना, संघर्ष, और जिजीविषा की एक अनवरत कहानी है, जहाँ एक ओर मनुष्य के आंतरिक संसार का स्ट्रगल है तो वहीं दूसरी ओर अपने अस्तित्व की रक्षा एवं पहचान की स्वीकृति के लिए लगातार संघर्ष। यह उपन्यास पाठकों को उस यथार्थ से रूबरू करवाता है जो हमारे सामने होते हुए भी हम समझ नहीं पाते। इस उपन्यास को पढ़ने के उपरांत हम लेखक के साथ ऐसी दुनिया में प्रवेश करते हैं जहाँ होकर भी हम नहीं होते।

यह उपन्यास काल्पनिक उपन्यास से कई गुणा ज़्यादा आकर्षित करती है तथा हर पृष्ट कुछ पल सोचने को मजबूर करता है। उपन्यास को पढ़ने के उपरांत पायल के प्रति हमदर्दी उत्पन्न होती है। यह उपन्यास उन सभी किन्नरों की त्रासदी है जो घर से विस्थापित होने के पश्चात समाज में यातना, शोषण एवं संघर्ष को भोगने के लिए मजबूर

है। उपन्यासकार महेन्द्र भीष्म जी से कॉल पर बात हुई तो उन्होंने कहा, स्वयं पायल के मुख से उनकी आत्मकथा को सुनते हुए चार वर्षों के पश्चात, इस आत्मासंघर्ष को उन्होंने उपन्यास का रूप दिया। यह उपन्यास काफी चर्चित भी रहा तथा तीन वर्षो में यह चतुर्थ संस्करण सबके सामने है जिसे मैंने अपने अनुनियोजित कार्य के लिए चुना है।

मानव समाज में परिवार की एक अहम भूमिका होती है, यह सामाजिक जीवन में निरंतर विकास के लिए आवश्यक प्रकार्य करता है। मनुष्य जिस परिवार में जन्म लेता है उसी से उसकी पहचान होती है परंतु यदि वह सामान्य जन से भिन्न हो या तृतीय लिंगी हो, तो समाज का दृष्टिकोण उसके प्रति अलग हो जाता है। कहते हैं परिवार से बड़ी कोई संपत्ति नहीं होती और पिता से बड़ा कोई परामर्शदाता नहीं होता परंतु जब वही पिता अपने संतान के साथ असहनीय व्यवहार करे तो उसकी मनोवृति क्या होगी? जबकि एक अच्छा परिवार ही बच्चे के चरित्र निर्माण में सहायक होता है परंतु समाज के डर से बचपन में ही इन्हें अपने परिवार से दूर कर दिया जाता है।

परिवार से विस्थापित या बेदखल कर दिए जाने पर एक किन्नर के लिए अपना कहने वाला कोई नहीं होता, समाज द्वारा भी उपेक्षा और तिरस्कार के अलावा कुछ नहीं मिलता। इस उपन्यास में भीष्म जी ने पायल उर्फ जुगनी द्वारा समाज और परिवार से मिली यातनाओं का यथार्थ चित्रण किया है। बेटे की चाह में राम बहादुर (पायल के पिता) को एक और लड़की हुई अर्थात तृतीय लिंगी संतान। जिसका सारा दोष माँ पर मढ़ दिया जाता है जैसे बेटे को जन्म देना उन्हीं के हाथ में हो। सच तो यह है कि सामान्य नर-नारी को परिवार में जो आदर, सम्मान, शिक्षा आदि मिलती है वह एक नपुंसकलिंगी को नहीं मिलती। परिवार में मिली इसी कष्टदायी पीड़ा को कथाकार हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। पितृसत्ता की संकीर्ण मानसिकता लिए पायल के पिता अपनी सबसे बड़ी संतान राकेश को अधिक लाड़ प्यार से रखते हैं तथा उसे भी अपने जैसा ही बना लिया था। पिताजी के आध महीने काम पर बाहर रहने से पायल और उसकी बहनें बड़ा सुकून

महसूस करते तथा जब कभी पिता घर वापस आते तो उसे गोद में लेना तो दूर उसकी ओर देखना भी दूभर समझते।

परिवार में एक तृतीय लिंगी बच्चे के रूप में जन्म लेना कितना कष्टदायी होता है यह उस बच्चे को ही पता होता है जो इन यातनाओं को सहता है। लैंगिक विकृति वाले इंसान के साथ परिवार में हो रहे भेद-भाव को कथाकार ने इस उपन्यास में दिखाया है। पायल स्वयं कहती है कि एक ट्रक ड्राइवर में जितनी बुराइयाँ होनी चाहिए वह सब उसके पिता में मौजूद थी, चीखना-चिल्लाना तथा दारू के नशे में पीटना उनका शौक बन गया था। जबकि पिता ही एक संयुक्त परिवार का मुख्य स्तंभ होता है। एक निर्दोष बालमन को उसके देह की विकृति का आभास नहीं होता परंतु पिता के दारू के नशे में कोसते,गाली देते रहते उसे यह अहसास कराया जाता है। वे अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए कहते हैं – "ये जुगनी ! हम क्षत्रिय वंश में कलंक पैदा हुई है, साली हिजड़ा है...आदि जाने क्या-क्या वे बकते रहते थे।"[1] हिजड़ा यह शब्द पायल ने सबसे पहले उन्हीं के मुख से सुना था परंतु तब वह इस शब्द से अनजान थी शायद इसका अर्थ तक ना जानती थी।

हमारे समाज में कहीं न कहीं लड़का-लड़की में भेद देखने को मिल ही जाता है। एक पिता में बेटे के प्रति जो मोह होता है वह शायद उसे बेटी के लिए नहीं दिखता। कुछ दिनों पश्चात जब पायल स्कूल जाने लगती है तो उसे बाहर भेजने से पहले उसके कपड़ों को लेकर सावधानी रखी जाती है कि किसी को संदेह ना हो कि यह हिजड़ा है। परंतु एक दिन जुगनी को लड़कों की वेशभूषा में देखकर उसके पिता अत्यंत प्रसन्न हुए तथा पहली बार उसे गोद में लिया और हवा में उछाल कर लोप लिया। अपने आँखों को नम किए, जुगनी के सिर पर हाथ रखकर रुंधे गले से बोले 'जुगनू! जुगनू सिंह! जिंदा रह' यह उस कठोर पिता का पहला आशीर्वाद था जुगनी के लिए, नहीं शायद जुगनू के लिए, जिसे वह हमेशा देखना चाहते हैं। अतः अपनी पत्नी शांति से भी जुगनी को लड़कों की आदत सिखाने को कहते हैं जिससे समाज के लोग उसके शादी रिश्ते की बात ना करें।

अपनी वास्तविक पहचान छुपाकर किन्नरों का घर में रहना, परिवार के लोगों को बिल्कुल मंजूर नहीं होता। यदि घर में रहकर जीवन व्यतीत करने का भी सोचे तो परिवार द्वारा असहनीय पीड़ाएँ सहने के अलावा कुछ नहीं मिलता । पायल के लिए यह दुनिया बहुत ही अजीब थी जहाँ दिन बड़े असहनीय दर्द भरे होते हैं। पिता के ना रहने पर अम्मा और बहनें पायल को जुगनी के कपड़ों में रखती थी परंतु कहीं ना कहीं पिता का वह आक्रोश उनके मन-मस्तिष्क में घर कर गया था और अम्मा को पिता का कहा याद आता है- "कान खोल कर सुन ले कमलेश की अम्मा ! अगली बार जब मैं आऊं और यह साला हिजड़ा लड़की के कपड़े पहने मिला और घर के बाहर निकला तो मैं अपने हाथों से इस साले का खून कर दूँगा।"[2] अगर एक पिता ही अपनी संतान के साथ इस तरह का व्यवहार करे तो समाज के लोगों से क्या आशा की जा सकती है। इस संदर्भ में चित्रा मुद्गल जी का उपन्यास **'पोस्ट बॉक्स नं 203 नाला सोपारा'** भी है, जिसमें विनोद उर्फ बिन्नी की भी शारीरिक संरचना ऐसी ही है। विनोद की माँ उसे हॉस्टल भेजना चाहती है जिससे हिजड़ा समुदाय को उसकी खबर ना मिले परंतु पिता अपने परिवार की बदनामी के डर से घर बदल देता है और घोषित करता है कि दुर्घटना में विनोद की मृत्यु हो गई और अवशेष तक नहीं मिले।

परिवार और समाज द्वारा विस्थापित होने पर यदि कोई किन्नर अपनी जीविका हेतु भीक्षावृति, नाचने गाने जैसे पेशों को अपनाए तो भी समाज उन्हें उसी हेय और तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से ही देखेगा। तो प्रश्न उठता है कि वे करे तो करे क्या? क्या समाज उन्हें किसी साधारण मनुष्य की भांति कोई व्यवसाय या किसी कार्यालय में कार्य करते हुए देखने में सक्षम होगी? क्या मनुष्य में इतनी परिपक्वता है की उन्हें समाज का एक अंग स्वीकार सकें? शायद नहीं। समाज और परिवार द्वारा किया गया यह परित्याग ही उन्हें गलत मार्ग की ओर ग्रसित करती है। लेखिका **चित्रा मुद्गल** कृत उपन्यास **'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा** ' का पात्र बिन्नी ऊर्फ विनोद भी विस्थापन का दंश सहते हुए कहता है कि "असामाजिक तत्वों के हाथ की कठपुतली बनने में जितनी भूमिका किन्नरों के सन्दर्भ में बहिष्कार-तिरस्कार की रही है, उससे कम उनके पथभ्रष्ट

निरंकुश सरदारों और गुरुओं की नहीं।"[3] यह बड़ी दुर्भाग्य पूर्ण बात है कि समाज के शिक्षित वर्ग जिन्हें इस प्रकार की कुरीतियों का विरोध करना चाहिए वे ही अपनी कुंठित मानसिकता के साथ किन्नर समाज का बहिष्कार करते हैं। उन्हें शिक्षा से वंचित रखते हुए लोग उन्हें पथभ्रष्ट कर उनके सुखांत जीवन जीने का मार्ग ही बंद कर देते हैं। इसी संदर्भ में **भगवंत अनमोल** जी का उपन्यास '**जिंदगी 50-50**' की पात्र हर्षा उर्फ़ हर्षिता एक किन्नर के रूप में जन्म लेती है जो अपने साथ किए व्यवहार से व्यथित होकर कहती है-"पता नहीं मेरे अन्दर ऐसे कौन से कांटे लगे हुए हैं, जो लोग अगर मेरे पास में बैठेंगे तो उनको चुभ जायेंगे और उन्हें सजा मिल जायेगी!"[4] यहाँ तक की स्कूल की अध्यापिका भी स्कूल में शैतानी कर रहे बच्चों से कहती है-"अगर किसी ने बदमाशी की तो उसे हर्षा के पास बैठा दूंगी"[5] यहां शिक्षक वर्ग भी जिन्हें लोगों को इन बुराइयों के प्रति अवगत कराना चाहिए इन्ही में शामिल है।

पुलिस का कार्य है, समाज की सेवा करना परंतु वही प्रशासन जब मर्यादा हीन हो जाए तथा अनैतिकता के मार्ग पर चले तो? हमारे समाज में कुछ ऐसे पुलिसकर्मी भी मौजूद हैं, जो इस शक्ति का गलत प्रयोग करते हैं। घर से भागने के पश्चात पायल जब उन्नाव प्लेटफार्म पर नींद में बैठी होती है तो उसकी बगल में बैठा एक मुच्छड़ सिपाही उसके साथ गंदी हरकतें करता है। डंडे का भय दिखाकर सिपाही पायल को घसीट कर प्लेटफार्म की दूसरी ओर ले जाता है तथा अंधेरे का फायदा उठाकर दुष्कर्म करने की कोशिश भी करता है। अतः पायल के रोने पर वह उसे धमकाता है- "अरी चुप कर... चुप कर नहीं तो यह डंडा देख रही है न... घुसेड़ दूंगा तेरी... में।"[6] परंतु पायल टस से मस नहीं होती। कुछ देर पश्चात एक ट्रॉली वाला उसके साथ हो रहे ज़्यादती का अनुमान लगा लेता है तथा ईश्वर की कृपा से पायल उस भेड़िए की चंगुल से बच निकलती है। जिस पुलिस को समाज की सेवा का दायित्व दिया जाता है यदि वही समाज में इन किन्नरों के साथ अश्लीलता तथा अनैतिकता का व्यवहार करें तो लोग न्याय की उम्मीद किससे करें? इस विषय में सरकार को सोचने की आवश्यकता है।

घर से विस्थापित होकर इस संघर्षपूर्ण समाज में आगे बढ़ते रहना आसान नहीं होता। समाज में लड़की का रूप धारण कर पायल के लिए रहना दुष्कर हो गया था। वह अब इन खाकी वर्दी वाले सिपाहियों के निगाहों से दूर ही रहती थी। इन सब लोगों से बचने के लिए पायल कपड़े चोरी कर लड़के के वेशभूषा में रहने लगती है तथा यह युक्ति आगे के दिनों में काम आती है- "लड़के का रूप धरते ही मैंने देखा कि मेरी ओर कोई भी नहीं देख रहा था। इतना बड़ा परिवर्तन जो लड़की की ओर घूरते हैं वे लड़के की ओर ध्यान भी नहीं देते।"[7] समाज के विकृत सोच से स्वयं को बचाने का पायल को यही उपाय सूझा था।

भूख की पीड़ा क्या होती है यह एक भूखे व्यक्ति के अलावा और कोई नहीं समझ सकता। पेट की आग मनुष्य को उसके स्वभाव के विपरीत जीने के लिए मजबूर कर देती है तथा उसे उन परिस्थितियों के साथ समझौता करना पड़ता है। बचे खुचे पैसे खत्म होने के बाद पायल भी इस पीड़ा से वाकिफ हो चुकी थी। पायल की भूख की पीड़ा का चित्रण भीष्म जी ने कुछ इस प्रकार किया है- "मैंने देखा मेरी हम उम्र के दो बच्चे वहाँ आकर जूठे दोने चाटने लगे। मुझसे रहा नहीं गया। मैं भी उनके पास जाकर बैठ गयी।... दोने में मटर के कुछ दाने थे पर दही व मीठी चटनी लगी हुई थी, मैंने जीभ से दोना चाट लिया।"[8] भूख से तड़प रही पायल स्टेशन के प्लेटफार्म पर किसी को खाना खाते देखती तो इस उम्मीद से देखती कि सामने वाला व्यक्ति तरस खाकर कुछ दे दे परंतु बदले में उसे मिलती है तो केवल गालियां और दुत्कार। जब एक व्यक्ति अपने टिफिन की बदबूदार भोजन को पटरियों पर फेंक देता है तो पायल उन लोगों की नज़रों से बचकर प्लेटफार्म से उतरकर उस खाने को उठा लेती है। यहाँ समाज के इन लोगों की वास्तविकता भी देखने को मिलती है जो अपनी झूठी शान के कारण लोगों की मदद करने से कतराते हैं।

वर्तमान समाज में किसी न किसी रूप में संघर्ष होता ही है, क्योंकि समाज में अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संघर्ष ज़रूरी है। पायल भी अनवर नाम के हम उम्र लड़के के साथ प्लेटफार्म पर दातुन बेचने लगती है। दातुन बेचकर वह २ रुपए तक कमाने

लगी, जो उसके पेट की आग बुझाने को पर्याप्त थे। अनवर को चोरी करने की लत लग गई थी जो बाद में उसके लिए काल बन गई। एक दिन चोरी करते हुए अनवर सिपाही के मारे हुए डंडे का निशाना बनता है तथा असंतुलित होकर आगे का हिस्सा चलती ट्रेन में घुस जाता है, तत्क्षण अनवर का शरीर दो भागों में बँट जाता है। इस भयानक दृश्य को देख पायल निष्क्रिय हो जाती है। उपन्यास में ऐसी आकस्मिक घटनाएँ जगह-जगह देखने को मिलती हैं जो पाठकों को कुछ देर सोचने पर विवश करती हैं। रेलवे स्टेशन छोड़ने का निश्चय कर, अपनी जीविका के लिए पायल पंडित जी के चाय की दुकान पर काम करने लगती है तथा रहने और खाने की भी व्यवस्था हो जाती है। अब पायल अपने जीवन को गति देने के लिए आत्मनिर्भर हो जाती है।

मनुष्य अपनी जिजीविषा को यदि जगाए रखें उसके प्रति मोह पैदा करें, तभी उसका जीवन जीने योग्य बनता है। इस संघर्षमयी ज़िंदगी को अपना बनाने का प्रयत्न पायल हमेशा करती रहती है। इसी जिजीविषा को लिए पायल अब ठेकेदार संतोष सिंह की कैंटीन अप्सरा टॉकीज चली जाती है। पंडित जी को बिना बताए संतोष दादा के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती है। कैंटीन का परिसर काफी बड़ा था जहाँ उसके साथ एक नेपाली लड़का जोली और चौकीदार प्रमोद रहता था। जुगनू के सीखने की प्रवृत्ति से संतोष दादा खुश रहते थे, वे पायल को इसी नाम से जानते थे। प्रमोद चौकीदार कामी प्रवृत्ति का व्यक्ति था, वह उससे चौकनी रहती थी। प्रमोद के इसी प्रवृत्ति से पायल बिना बताए कैंटीन छोड़ कर चली जाती है। ऐसे वक्त पायल को काम की सख्त ज़रूरत थी और इसी की तलाश में वह एक गिरोह के चंगुल में फंस जाती है, जहाँ से निकलना लगभग असंभव था। वह गिरोह बच्चों से भीख मँगवात था। वहाँ अन्य बच्चे भी थे जो घर से भागे हुए थे तथा उनके पास अपनी-अपनी वजहें थी। परंतु उनमें पायल की तरह कोई ना था जो 'हिजड़ा' होने के कारण पिता की संकीर्ण मानसिकता से बचने के लिए भागी थी। यहाँ कथाकार समाज की एक मूल समस्या को सामने रखते हैं जिसका कहीं ना कहीं दोष उनके माता-पिता का भी है जो बच्चों की मानसिकता को समझ नहीं पाते तथा उन्हें घर से निकाल फेंकते हैं। भगवान की कृपा से पुलिस की रेड पड़ने पर पायल

उस नर्क से निकल जाती है तथा बाद में राजकीय बाल गृह के सहयोग से अपनी अम्मा और राकेश से भी मिलती है।

कथाकार भीष्म जी ने उपन्यास में पायल के जीवन की त्रासदी को ही नहीं उसके कुछ करने की भावना को भी अभिव्यक्त किया है। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो अपने अतीत के यथार्थ को भूलकर समाज में अपनी पहचान बनाना चाहते हैं, पायल भी उनमें से एक है। प्रमोद के पुनः किए गए शोषण के कारण उसकी दैहिक सच्चाई सबके सामने आ जाती है। अतः पायल संतोष दादा की मेहरबानी से पूनम टॉकीज चली जाती है। कानपुर के अप्सरा टॉकीज की कैंटीन में चाय समोसा बनाने का काम करने के बाद पायल पूनम टॉकीज में गेटकीपर की नौकरी करने लगती है। अपनी कार्यकुशलता के बल पर वह प्रोजेक्टर रूम में कटियार साहब की सहायक भी बनती है। बाद में लखनऊ में ऑर्केस्ट्रा का काम भी करने लगती है। टॉकीज में फिल्में देखते रहने के कारण पायल एक अच्छी डांसर बन गई थी। बचपन से लेकर किशोर अवस्था तक पायल का जीवन हमेशा से ही उलझनों से भरा रहा, कभी लड़की के रूप में तो कभी लड़के के रूप में। लेकिन पायल ने इन दोनों किरदारों को बखूबी निभाया।

पायल ने ये सिद्ध कर दिया कि सामान्य जन की तरह एक मंगलमुखी(किन्नर) भी सारे काम कर सकती है जो समाज में पुरुष या स्त्री करते हैं। सामान्य लोगों की तरह यह भी जीवन यापन करना चाहते हैं परंतु समाज उन्हें वह अवसर ही नहीं देता, जिससे वह समाज के निर्माण में सहायक हो सके। आमतौर पर देखें तो किन्नर समाज आज भी कहीं-न-कहीं त्रासदीपूर्ण जीवन जीने को विवश है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि 'मैं पायल' उपन्यास समाज में उपेक्षित तथा उपहास का पात्र माने जाने वाले वर्ग 'हिजड़ा' जिसे शिष्ट भाषा में 'किन्नर' कहा जाने लगा है की वेदना पीड़ा तथा परिवार एवं समाज से मिली संवेदनहीनता की आत्मकथा है। उपन्यास में पायल के माध्यम से समाज में वर्षों से चली आ रही झूठी मान मर्यादा के चलन का प्रतिरोध किया गया है, जिससे किसी मनुष्य का उपहास उसकी शारीरिक विकृति के कारण किया जाता है। उपन्यास के केंद्र में ज़रूर पायल तथा किन्नर समुदाय

का संघर्ष है लेकिन इसके अतिरिक्त प्रशासन व्यवस्था और व्यक्ति के अंदर छिपी कलुषित प्रवृतियां, बाल मन की यौन जिज्ञासाएँ, बाल मज़दूरी, समाज की हृदयहीनता, भूख की त्रासदी तथा ममतामई माँ की संवेदना जैसे अनेक विषय सामने आते हैं। भीष्म जी ने पायल के माध्यम से सभी किन्नरों के जीवन की त्रासदी को अभिव्यक्त किया है।

महेन्द्र भीष्म जी आधुनिक काल के जाने-माने कथाकारों में से एक हैं, जिन्होंने साहित्य के अनछुए विषयों को छुआ हैं। इनका पहला उपन्यास 'किन्नर कथा'(2010) भी समाज में उपेक्षित किन्नर वर्ग से ही संबंधित है, जो काफी चर्चित भी रही। 'मैं पायल' उपन्यास भी एक नए विषय के साथ समाज के सामने कई प्रश्न उठाता है कि यदि इनके माता-पिता दूसरे बच्चों की तरह इन्हें पढ़ाते-लिखाते, अच्छी परवरिश देते तो यह वर्ग भी आज किन्नर समाज में फैली उन तमाम बुराइयों से स्वयं को बचा लेता। इस स्थिति के लिए स्वयं किन्नर भी कहीं ना कहीं दोषी हैं जो वर्षों से चली आ रही इस व्यवस्था में खुद को बाँधे हुए हैं, वे इससे निकलने का प्रयास तक नहीं करते क्योंकि इनमें आत्मविश्वास की कमी है। शिक्षा का अभाव इनके चरित्र के पतन का मूल कारण बनता है। इस उपन्यास में पायल भी इन सुविधाओं से वंचित रही परंतु उसने अपनी जिजीविषा को खत्म होने नहीं दिया तथा समाज में अपने अस्तित्व की रक्षा पहचान स्वीकृति के लिए निरंतर संघर्ष करती रही।

संदर्भ–ग्रंथ सूची:–

1. भीष्म, महेंद्र. *मैं पायल*…,अमन प्रकाशन– कानपुर, 2016, पृ-24
2. वही, पृ-34
3. मुद्गल, चित्रा. *पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा*, सामयिक प्रकाशन, 2016, पृ- 61
4. अनमोल, भगवंत. *ज़िंदगी 50-50*, राजपाल प्रकाशन– दिल्ली, 2017, पृ-40
5. वही, पृ -51
6. भीष्म, महेंद्र. *मैं पायल*…,अमन प्रकाशन– कानपुर, 2016, पृ-48
7. वही, पृ-52
8. वही, पृ-59

1.विकास साव, पी-एच.डी. शोधार्थी,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला,
मो०- 6295928752
मेल- vshaw460@gmail.com

2. राहुल महतो, एम० ए०,
बर्दवान विश्वविद्याल, बर्धमान,
मो०- 8116492757
मेल- rahulmahato337@gmail.com

मानवीय संवेदनाओं का मार्मिक दस्तावेज़ 'मढ़ी का दीवा' उपन्यास

डॉ. सुशीला

भारतवर्ष में विभिन्नताएँ प्रत्येक भारत के हिस्से, भाषा, संस्कृति, पर्वों आदि में विद्यमान है। यह विविधता साहित्य में भी देखने को मिलती है। जहाँ अपनी-अपनी भाषाओं के मौन साधक अपनी भाषा, क्षेत्र, अंचल की समस्याओं, भावनाओं को सामने लाने का प्रयास कर रहे हैं। इसी प्रयास को पंजाबी भाषा में सफलतापूर्वक प्रसिद्ध साहित्यकार गुरदयाल सिंह ने निभाया है। पंजाबी संस्कृति इनके साहित्य का प्राण है। इनके द्वारा लिखा गया विपुल साहित्य इसका प्रमाण है। उपन्यास, कहानी-संग्रह, नाटक, आत्म-कथा, बाल-साहित्य, संपादित, अनुदित इनके कृतित्त्व का उज्ज्वल पक्ष है। बहुत कम साहित्यकार ऐसे होते हैं, जो अपनी पहली कृति से ही साहित्य जगत में पहचान बना लेते हैं। गुरदयाल सिंह को वह श्रेय प्राप्त है। इनका पहला उपन्यास 'मढ़ी का दीवा' सन् 1964 साहित्य जगत् में इतना लोकप्रिय बनकर सामने आता है कि सब आलोचक, पाठक इसके प्रशंसक बन गये। गुरदयाल सिंह ने स्वयं ही इसका हिन्दी में अनुवाद किया है जिससे इसकी पहुँच सारे देश में हुई, जिसके कारण इसकी लोकप्रियता और अधिक बढ़ गई। सुप्रसिद्ध हिन्दी आलोचक, चिंतक डॉ. नामवर सिंह, डॉ. शिवदयाल सिंह चौहान, प्रसिद्ध लेखक विष्णु प्रभाकर आदि ने इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। आँचलिक उपन्यासों में इसे श्रेष्ठ माना गया है। इस उपन्यास का फिल्मांकन भी हो चुका है। कई बार रंगमंच पर इसका मंचन भी किया जा चुका है। हिन्दी सहित अनेक भाषाओं में इसका मंचन हो चुका है। इसे कालजयी कृति के रुप में भी स्मरण किया जाता है।

पंजाब की जागिरदारी व्यवस्था पर इतना कड़ा प्रहार पाठक को झकझोर कर रख देता है। युगों से वंचित ज़मींदारों के अत्याचारों से त्रस्त निम्न वर्ग की पीड़ा को इतनी जीवंतता से चित्रित किया है कि पाठक के नेत्र कई बार सजल हो उठते हैं। 'मढ़ी का दीवा' उपन्यास में कुछ ऐसे पक्ष हैं जो इसके काव्य को उभारने में सहायक सिद्ध हुए हैं। जिनका वर्णन क्रमशः इस प्रकार से है:-

जमीन के प्रति लगाव/मोह-

उपन्यास 'मढ़ी के दीवा' के नायक जगसीर का पेशा सीरी 'नौकर' का था, जो अपने मालिक धर्मसिंह के साथ उसकी ज़मीन पर जी-तोड़ मेहनत करता था। धर्मसिंह का पिता जगसीर के पिता को कहीं दूसरे गाँव से लाया था। काम तो उसका नौकर का था, परन्तु

उसने अपनी मेहनत और प्यार से धर्मसिंह के पिता का ऐसा दिल जीता कि उसने चार बीघा ज़मीन जगसीर के पिता को दी, जिसे जगसीर 'अपनी' कहता है। कानूनी रूप से तो वह मालिक नहीं था, पर प्रेम के आगे कानून का महत्त्व नहीं। पहले जगसीर के पिता ने और फिर जगसीर ने अपने परिश्रम से अपने मालिक के खेतों से, अपने खेतों से सोने की तरह फसलों का उत्पादन किया। उनके परिश्रम से सारा गाँव ईर्ष्या भी करता, प्रशंसा भी करता।

जगसीर का ज़मीन के प्रति लगाव का वर्णन करते हुए एक स्थान पर उपन्यासकार ने वर्णन किया है ''तीस वर्ष तक इसका पिता इस खेत को जोतता रहा था। तीस वर्ष तक इसके पिता का पसीना इस मिट्टी में रचता रहा था और अब जगसीर जब भी इस खेत को जोतने लगता है तो उसे मिट्टी से पसीने की गँध जैसी आने लग पड़ती है। पता नहीं क्यों, धर्मसिंह के अन्य खेत जोतते हुए जगसीर को मिट्टी से ऐसी गँध कभी नहीं आई।''[1] (तीह वरे ओहदा पियो ऐस वैली नूं बाहुंदा रिहा सी। तीह वरे ओहदे प्यो दा मुड़का इस मिट्टी विच रचदा रिहा सी...जगसीर जदों बी एह खेत वाहुणा लगदा तां आहनू मिट्टी विचों मुड़के दे मशक वरगी हौंक आउन लग्ग पैंदी। पता नहीं क्यों, धर्मसिंह ने सारे खेत बाहुदिया जगसीर नूँ मिट्टी विच्चों कदे अजि ही हौंक नहीं सी आयी)

इस ज़मीन से लगाव का एक और कारण उसके पिता की स्मृति में बना छोटा चबूतरा 'मढ़ी' भी है। जो उसने अपने पिता की मृत्यु के बाद उसकी इच्छानुसार शीशम 'टाहली' के वृक्ष के नीचे बनाई थी। मरते समय उसके पिता ने कहा था, ''मेरी मढ़ी, मेरी टाहली के नीचे बनाना और टाहली की पूरी देखभाल करना-यदि तुम मेरे अपने बेटे हो।''[2] सारी उम्र जगसीर ने अपने पिता की कही बात को पूरा करने का प्रयास किया। ज़मीन के प्रति लगाव की चरमसीमा का उदाहरण है ''इस खेत के दाने वो कभी मंडी में बेचते नहीं थे। केवल घर खाने के लिए और बोने के लिए बीज के रुप में ही इसका प्रयोग करते थे। जितनी मर्ज़ी ज़रूरत पड़ जाए, वो एक दाना भी न बेचते यदि नंदी 'जगसीर की माँ' इस पागलपन के पीछे लड़ती तो धर्मसिंह बड़ी गंभीरता से कहता-''कमली ये कभी किसी भाग्यशाली ने दूध और बेटे को बेचा है? नंदी और गुस्से में कहती-अक्ल के मारे कहाँ-दूध और कहाँ बेटा और कहाँ दाने...इनकी कहाँ समानता है।"[3] 'एहदे दाणे ओह कदे मंडी नहीं सन बेचदे, सिरफ घर खाण...अते बी पाउण लई बरतदे सन। किन्नी लौड़ पै जांदी, ओह इक दाणा वी ना बेचदे। जे नंदी ओहदे इस

कमलववा पिछे लड़दी तां ओह बड़ी गंभीरता नाल आखदा- ''कमलीए कदे किसी भागा वाले ने दूध-पुत्र वी बेचै ऐ।''

जगसीर ने अपने पिता की परम्परा को टूटने न दिया। इस खेत का एक भी दाना कभी भी नहीं बेचा। ज़मीन के प्रति उसका मोह समय के साथ बढ़ता गया। ज़मीन भी ऐसी जिस पर उसका कोई मालिकाना हक नहीं केवल मौखिक आश्वासन पर दो लोगों की आपसी सहमति पर दी गई ज़मीन जिसे जगसीर ने अपना मानकर उसपर अथक परिश्रम किया, वहीं दूसरी ओर धर्मसिंह का बेटा भंता इस समझौते को मानने को तैयार नहीं। अन्त में वो जगसीर को उस खेत में पैर तक नहीं रखने देता जिसे जगसीर बचपन से अपना कहता आया है। ये...बानगी केवल एक जगसीर की नहीं। ऐसे कई जगसीर पंजाब के गाँवों में मिल जाएँगे जिन्होंने बड़ी मेहनत से मिट्टी में से सोना निकाला और उनका महत्त्व मिट्टी से भी कम आँका गया। समय आने पर उन्हें दूध में पड़ी मक्खी की तरह निकाल दिया गया। यह प्रवृति ज़मींदारों की उस मानसिकता को दिखाती है जो अपने सामने किसी और को तरक्की करते हुए नहीं देख सकते। ऐसी त्रासदी का शिकार जगदीश चन्द्र के उपन्यास 'धरती धन न अपना' का काली भी होता है। जिस ज़मीन पर निम्न वर्ग रह रहा है, वही उसकी अपनी नहीं है। वे तो केवल ज़मींदारों, चौधरियों की दया पर रहते हैं और ज़मींदार यही चाहते हैं कि सारी उम्र ये लोग इनके गुलाम बने रहें। उतनी उनको सुविधा भी नहीं देनी जिनसे इनका जीवन सुधर जाये।

पीढ़ीगत अंतराल:-

जगसीर और धर्मसिंह के पिता का आपस में गहरा प्रेम था। मालिक-नौकर नहीं भाई से भी बढ़कर दोनों ने एक-दूसरे को समझा। मरते समय धर्मसिंह का पिता जगसीर के पिता को उसकी 'धर्मसिंह' की ज़िम्मेदारी दे गया। इसी तरह जगसीर के पिता ने मरते समय धर्मसिंह से वचन लिया कि दोनों एक-दूसरे के साथ भाई की तरह रहेगें। कभी भेदभाव नहीं करेंगे। यदि ऐसा कभी हुआ तो दोनों की आत्माओं को कभी शाँति नहीं मिलेगी। धर्मसिंह और जगसीर ने अपने पिता को दिए वचनों को तनदेही से पालन किया परन्तु धर्मसिंह का बेटा भंता ऐसी सैद्धान्तिक बातों के पक्ष में नहीं था। वह कभी नहीं चाहता था कि कोई नौकर उसकी बराबरी करे। नौकर को नौकर ही रहना चाहिए। इसी बात को लेकर उसकी अपने पिता से बहस भी हो चुकी थी। जगसीर से भी वह द्वेष रखता था। हमेशा कड़वे वचन बोलता था, परन्तु जगसीर ने कभी उसकी बात का बुरा

नहीं माना। धर्मसिंह धीरे-धीरे सारी ज़िम्मेदारी अपने बेटे को देते जाता था, उसे यह डर भी था कि उसकी मृत्यु के बाद उसका बेटा जगसीर के साथ बुरा व्यवहार करेगा। कई बार भंते ने जगसीर के पास पड़ी अपनी चार बीघा ज़मीन वापस लेने की बात कही। धर्मसिंह उसे हर बार समझाता, ''काका, पता नहीं किसके कर्म की खातें हैं...इतना अहंकार अच्छा नहीं होता, सब अपनी-अपनी किस्मत से खाते हैं। कोई किसी को देने के काबिल है?" 'काका, 'पता नी', कीहदे करम खानें ऐ...ऐना अहंकार 'चंगा नी हुँदा, सभ अपणे करम खंदे ऐं...कोई किसने नू की दैंण जोगैं।"[4]

वचन पालन:

उपर्यक्त उपन्यास वचन पालन की पराकाष्ठा को दर्शाता है, जहाँ एक-दूसरे से किया वचन पूरी उम्र और पूरी शिद्दत के साथ निभाया जाता है। जगसीर और धर्मसिंह के पिता आपस में भाइयों जैसा रिश्ता निभाते हैं, सारा गाँव उनके प्रेम की संज्ञा का उदाहरण देता है। धर्मसिंह के पिता ने जगसीर के पिता को नौकर नहीं समझा। अपने परिवार का सदस्य बनाकर रखा। दोनों ने मेहनत से ज़मीन को इतना उपजाऊ बनाया कि उससे हुई आय से और ज़मीन खरीद ली। धर्मसिंह का पिता मरते समय धर्मसिंह को कहता है ''धरमया ठोले को मेरा ही रुप समझना, यदि इसके साथ कोई भेद-भाव रखा तो मुझे शांति नहीं मिलेगी, मेरी आत्मा नरक में तड़पती रहेगी। चाहे हमने एक ही माँ की कोख से जन्म नहीं लिया पर वैसे हम पिछले जन्म के भाई हैं। यह तो भक्ति में कोई विघ्न पड़ गया, जिसके कारण इसने किसी और के घर में जन्म ले लिया।" 'धरमया ठोले नूं मेरा रुप समझी, तो एहदे नाल कोई दुरैत रखी तां मैनूं शाँति नहीं मिलणी। मेरी आत्मा नरकाँ च तड़पती रहूँगी...भावें असी इक्को माँ दे पेटों जन्म नहीं लया, पर ऊँ, पिछले जन्म दे भरा ऐं, एह तां कोई भगती च विघ्न पै गया जिहड़ा एह होर घरों जन्म पया।"[5]

धर्मसिंह ने पूरी उम्र यह वचन निभाया। उसकी बेटियों की शादी स्वयं की। उसके घर का खर्चा अपने ज़िम्मे लिया। जगसीर के पिता को अपने पिता समान ही माना। किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रखा। ऐसा ही व्यवहार धर्मसिंह ने जगसीर के साथ भी किया। भले ही धर्मसिंह की पत्नी और बेटा उसका विरोध भी करते, परन्तु धर्मसिंह को इस बात की परवाह अधिक रहती कि वचन पालन में वह पीछे न रह जाए नहीं तो ऊपर से अपने पिता का सामना वह नहीं कर पाएगा। जगसीर ने पिता की स्मृति में बनाई गई मढ़ी 'ईंटों का चबूतरा' का पूरा ध्यान रखा। पिता द्वारा लगाए गए शीषम

'टाहली' के वृक्ष को बच्चों की तरह पालकर भंते द्वारा मढ़ी तोड़ दी गई और पेड़ को काट दिया गया। पहले तो उसने विरोध करना चाहा पर कुछ सोचकर ईंटें घर ले आया, जिस ज़मीन पर उसका अधिकार नहीं उसके लिए शोर मचाने का क्या लाभ? धर्मसिंह को उसके परिवार ने निकाल दिया और जगसीर ने ऐसी पीड़ा के कारण प्राण त्याग दिये। वचन पालन का ऐसा उदाहरण आज के समय में कहाँ देखने को मिलेगा।

प्रेम का मर्यादित रुप:

एक सीरी 'नौकर' के लिए कुछ भी कहना गुनाह है। वह न तो प्यार कर सकता है, न शादी के सपने देख सकता है। जिसका अपना कोई अस्तित्व नहीं, दूसरे के अस्तित्व के लिए कैसे सोच सकता है। ये भाव कृत्रिम नहीं स्थिति से उत्पन्न हुए हैं, जिससे पाठक जुड़ाव अनुभव करता है। सारी उम्र जगसीर भाणी से अपने प्रेम को अभिव्यक्त नहीं कर पाया। इसके पीछे आर्थिक और सामाजिक कारण अधिक थे। जगसीर जवानी में काफी सुन्दर था। उसके स्वस्थ शरीर की प्रशंसा करते थे। जगसीर को किसी तरह की बुरी आदतें नहीं थी। न नशा, न शराब, न किसी और लड़की को आँख उठाकर देखता। जब से उसने अपने दोस्त निक्के की पत्नी भानी को देखा तो मन के अन्दर भावनाओं का ज्वार उमड़ आया। जो भावनाएँ कहीं दबी पड़ी थी, एकदम से लहरों की तरह उछल कर निकल आई। मृत्यु पर्यन्त अपने इस मूक प्रेम को जगसीर अभिव्यक्ति न दे पाया। बस भावों के माध्यम से मूक स्वीकृति ही दोनों के बीच रही। ऐसा प्रेम जिसमें मांसलता का पुट न के बराबर रहा और वचन पालन को सर्वोपरि रखा गया। जिस दौर में यह उपन्यास लिखा गया उस समय प्रेम के नाम पर उच्शृंखला 'उदण्डता' साहित्य में अधिक रही है। ऐसे समय में प्रेम का ऐसा मर्यादित वर्णन निस्संदेह उपन्यासकार की उपलब्धि ही माना जाएगा। एक स्थान पर जगसीर कहता है ''हमारे साथ भगवान् है भानो। ऐसा काम हमने तब नहीं किया जब कर सकते थे, अब क्यों मुँह पर कालिख लगानी। कहने दो कुछ भी कहता है, चाँद पर थूकने से अपने मुँह पर ही थूक पड़ता है।" 'आपणे सन सब्ब है भानो। इहो जिहा गंद जदो आपां घोलण वेले न घोलया, हुज कालिख दा टिक्का काहदी खातर खट्टणा। आखण दे जो कोई आखदै, उताँह चँद ते थुक्किया आवदे मूँह ते ई पैदै' जगसीर की मृत्यु के पश्चात् उसकी स्मृति में मढ़ी के रुप में ही जगसीर अपनी ज़मीन के आस-पास ही रहेगा। यही उसकी इच्छा थी। जिसे भानी ने पूरा किया।

उपर्युक्त उपन्यास में कुछ ऐसे पक्ष हैं जो 'मढ़ी का दीवा' को पठनीय बनाते हैं। गुरदयाल सिंह ने इस उपन्यास के माध्यम से धन को सामाजिक रिश्तों, मूल्यों पर हावी होते दिखाया है। जहाँ एक गरीब सीरी की आशाओं को तार-तार किया गया है। यही आज का सच है। उसे सामाजिक रूप से स्वीकृति मिली ही नहीं। अपनी इच्छाओं को अभिव्यक्त करने का अधिकार उसे नहीं दिया गया। जहाँ संबंधों को मज़बूती केवल भौतिक दृष्टिकोण के आधार पर ही मिलती है।

कई आलोचकों ने लेखक गुरदयाल सिंह को पंजाबी साहित्य का मील का पत्थर माना है। जो स्थान हिन्दी लेखकों में प्रेमचन्द का है, बांग्ला में शरतचन्द्र का है, वही स्थान गुरदयाल सिंह का पंजाबी भाषा में माना जाना चाहिए। जिस प्रकार प्रेमचन्द ने पहली बार साधारण मनुष्य को उसके गुणों-अवगुणों सहित साहित्य में प्रस्तुत किया, शरदचन्द्र ने निम्न वर्ग/उपेक्षित वर्ग को साहित्य का विषय बनाया। उसी प्रकार गुरदयाल सिंह ने एक सीरी 'नौकर' के जीवन को मानवीय संवेदना के धरातल पर उतार दिया जिससे पाठक अपने आपको उसकी वेदना से, उसके दुःख से जुड़ा हुआ अनुभव करता है और यह वेदना काल, साहित्य, क्षेत्र से परे जाकर सार्वभौमिक हो जाती है।

संदर्भः-

1. सिंह, गुरदयाल. *मढ़ी का दीवा*, चण्डीगढ़, लोकगीत प्रकाशन सं. 2005 पृ. 20
2. वही, पृ.21
3. वही, पृ. 19
4. वही, पृ.19
5. वही, पृ.48

-डॉ. सुशीला
सहायक प्रोपफेसर, हिन्दी-विभाग
चौधी बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी ;हरियाणाद्ध

पुस्तक समीक्षा-

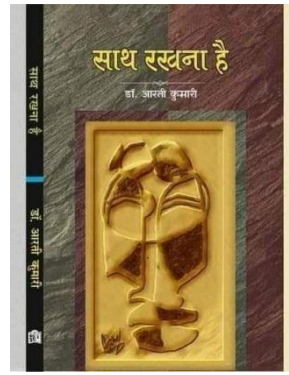

कहन का अलहदा अंदाज़ बनाता है डॉ. आरती की ग़ज़लों को ख़ास

-डॉ. रमाकांत शर्मा

मुझे यह लिखने में कत्तई किसी प्रकार की हिचक नहीं है कि ग़ज़ल आज काव्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। इसे इशारे का आर्ट भी कहा जाता है। इसमें शाइर कम लफ़्ज़ों का प्रयोग करते हुए अपने अशआर में अहसास को बयां करने का हुनर हासिल करने की कोशिश करता है।

लेकिन यह एक तरह की खुशफहमी ही कही जाएगी, क्योंकि हर शाइर को यह कुव्वत हासिल हो यह ज़रूरी नहीं। अमूमन यह हुनर आम शाइर में कम ही पाया जाता है।

हाँ, चचा मिर्ज़ा ग़ालिब की बात और थी कि जिनके लिए यह कहा जाता है कि-

हैं और भी दुनिया में सुख़नवर बहुत अच्छे
कहते हैं कि 'ग़ालिब' का है अंदाज़-ए-बयाँ और।

डॉ. आरती कुमारी के ग़ज़ल-संग्रह 'साथ रखना है' से गुज़रते वक़्त मुझे लगा कि इस मोहतरमा की शाइरी में यह 'अंदाज़-ए-बयाँ और' वाली खूबी है।

डॉ. आरती अपनी एक ग़ज़ल में कहती है:

मंज़िले-इल्म की डगर में हूँ
मैं ग़ज़ल के हसीं सफ़र में हूँ
तू बदलता है काफ़ियों की तरह
मैं रदीफों सी अपने घर में हूँ
दर्द मेरी ग़ज़ल के मिसरे हैं
और मैं इश्क़ के असर में हूँ

ग़ज़ल के इन अशआरों में रदीफ़, क़ाफ़िये और मिसरे की मार्फ़त कहन का एकदम से नया अंदाज़ है। मेहबूब और मेहबूबा के बीच का संवाद भी है, उल्हाना भी है, इश्क़ में दर्द का अहसास भी है और ग़ज़ल की हसीन राह पर चल पड़ने की खूबसूरत शुरुआत भी है।

इतनी सारी जुदा-जदा बातें असरदार तरीके से चंद अशआर में पिरो देना ही मेरी नज़र में ग़ज़लगोई का हुनर है। एक बात ओर। डॉ. आरती में कॉन्फिडेंस ग़ज़ब का है। उर्दू -हिंदी दोनों भाषाओं पर इनका ज़बरदस्त अधिकार है। दिल की बात करने और अनुभव को अभिव्यक्ति देने में इनको किसी प्रकार की परेशानी पेश नहीं आती। डॉ. आरती की सोच, उनकी समझ और उनकी संवेदना का आयतन बड़ा है। उनसे ज़िन्दगी का कोई कोना छूटा नहीं है। समय, समाज, सियासत, तहज़ीब, ग़रीबी, भूख, भय, मुफ़लिसी, बाज़ारवाद, इश्क़ मोहब्बत, दुःख-दर्द, घर-परिवार, आशा-निराशा, विसंगति-विडंबना जैसे सभी विषय उनकी लेखनी की ज़द में आते हैं। तहज़ीब को लेकर डॉ. आरती का यह शेर देखिये:

"अपनी तहज़ीब बचाने लिए
आँख का पानी बचाए रखिये"

सियासी हालात तो बिगड़े हुए हैं ही कि जिसके कारण लोकतंत्र में लोक यानी जन की दुर्दशा का दृश्य कुछ इस तरह से पेश आता है:

"ये सियासत थालियाँ बजवा रही है
किस तरह जाएंगे मजदूरों के दुर्दिन"

डॉ. आरती निराश होकर हिम्मत नहीं हारती। वे आँखों में ज़िंदा ख़्वाब और दिल में उम्मीद बनाए रखती हैं। आरती कहती हैं:

"'आरती' किस तरह से जिएगा वो
जिसकी उम्मीद मर गई होगी।
इन अँधेरों से ख़ौफ़ नहीं है मुझको
मैं समझती हूँ यहाँ नूर की बारिश होगी"

आशिक़ और माशुका अथवा पति-पत्नी के बीच नोंक-झोंक वाली सघन कोमल संवेदना को लेकर भी शाइरा आरती ने बहुत ही ख़ूबसूरत तरीके से लिखा है। चंद अशआरों पर ज़रा ग़ौर फरमाइयेगा:

"ख़्वाबों में आके मुझको सताने लगे हैं आप
हैरान हूँ कि वादा निभाने लगे हैं आप
अब तक तो इस ज़मीन पे चलना न आ सका
क्यों आसमान सर पे उठाने लगे हैं आप।"

रूढ़ियाँ और परंपरा के नाम पर किस क़दर हम बंदिशों में जकड़े हुए हैं, इस पर भी डॉ. आरती खुलकर कहती हैं। हमें दिल-दिमाग़ के दरवाज़े हमेशा खुले रखने चाहिए। इस बाबत एक ग़ज़ल के दो शे'र देखिए:

"इक ज़रा तितली हवा में क्या उड़ी
उसका तो दुश्मन ज़माना हो गया
नेकियाँ, तहज़ीब, रिश्ते, चाहतें
इनको देखे तो ज़माना हो गया।"

इस प्रकार डॉ. आरती कुमारी के ग़ज़ल-संग्रह को पढ़ना एक नए अनुभव से गुज़रना है। मैं उम्मीद करता हूँ इस संग्रह का अदीबों और अवाम के बीच शानदार स्वागत होगा।

समीक्षक: डॉ. रमाकांत शर्मा
9414410367
साथ रखना है (ग़ज़ल-संग्रह)
डॉ. आरती कुमारी
अभिधा प्रकाशन , मुजफ्फरपुर
मूल्य: 250/-

इलाचंद्र जोशी की उपन्यास शैली

ऋषिकेश श्रीवास्तव

गद्य साहित्य में शैली का महत्व है। रचनाकारों की मौलिकता का बोध उनकी रचनाओं की शैली से होता है। शैली रचनाकार और उसकी रचना को विशिष्ठ बनाती है। अलग-अलग रचनाकारों की शैली अलग-अलग होती है। कृतिकार की शैली उसके व्यक्तित्व पर औऱ उसका व्यक्तित्व उसके वातावरण, संस्कार, जीवन संबंधी दृष्टिकोण और भाव इत्यादि पर निर्भर करता है। उल्लेखनीय है कि साहित्य एक ललित कला है जिसका संबंध मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन से होता है इसलिए शैली का उपन्यास विधा के लिए विशेष महत्व है, "शिल्प और शैली का संबंध अभिव्यक्ति से है। शैली, शिल्प के अधीनस्त मानी जाती है। इस दृष्टि से शैली और शिल्प का निकट का संबंध है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। शैली भाषा का रूप चमत्कार है। प्राचीन भारतीय चिंतकों ने शैली को बड़ा महत्व दिया है। शिल्प विधि का संबंध रूप रचना की समस्त प्रक्रियाओं से है। उसका संपूर्ण ढांचा शिल्प है तो शैली उस ढांचे की अभिव्यक्ति की रीति है। शिल्प के अंतर्गत विविध शैलियों का प्रयोग किया जाता है।"[1] कहा जा सकता है कि जिस प्रकार रचनाकारों की शैलियों में अंतर होता है उसी प्रकार एक ही रचनाकार की विविध कृतियों में अंतर पाया जाता है। शैली का महत्व इस दृष्टिकोण से भी है कि शैली आशय के अनुकूल होना चाहिए तभी रचना का प्रभाव प्रतिपादित हो सकेगा। समय के साथ अनेक शालियों का उद्भावन हुआ है।

हिन्दी उपन्यास में वर्णनात्मक शैली, मनोविश्लेषणात्मक शैली, पूर्वदीप्ति शैली, आत्मकथात्मक शैली, पत्रात्मक शैली, संवाद शैली इत्यादि का प्रयोग हुआ है। हिन्दी उपन्यासों में वर्णनात्मक शैली का व्यापक प्रयोग पाया जाता है। वर्णनात्मक शैली में कृति के विस्तार के लिए अधिक भूमि मिल जाती है तथा इसमें कलात्मकता का विशेष ध्यान नहीं रखना पड़ता है। मनोविश्लेषणात्मक शैली में रचनाकार मन के विविध परतों को, आयामों को एक के बाद एक खोलता जाता है। कभी-कभी सम्पूर्ण उपन्यास का लेखन मनोविश्लेषणात्मक शैली पर आधारित होता है, तो कुछ उपन्यासों में पात्रों के

मन: स्थिति का विश्लेषण उक्त शैली के माध्यम से किया जाता है। ऐसा कहा जा सकता है कि मनोविश्लेषणात्मक शैली आधुनिक काल के गद्य साहित्य का अभिन्न अंग बन गया है। पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग कथानक की कड़ियों को जोड़ने के लिए कथाकार अपनी अधिकांश रचनाओं में करता है। पूर्वदीप्ति शैली के प्रयोग से कथा में रोचकता आती है। संवाद शैली न सिर्फ नाटकों में अपनाई जा रही है, बल्कि उपन्यासों में भी इस शैली का प्रयोग कथा-वस्तु के अनुरूप किया जा रहा है। आत्मकथात्मक शैली हिन्दी साहित्य की विशेष कर उपन्यासों की एक प्रमुख विशेषता बन गयी है। आत्मकथात्मक शैली में लिखे गए उपन्यासों में पात्र अपनी कथा स्वयं कहते हैं। आत्मियता की सृष्टि करने के लिए साहित्य में यह शैली उत्तम कही जा सकती है। वर्तमान समय में साहित्य में पत्रात्मक शैली का प्रयोग भी किया जा रहा है। कहना अनुचित न होगा कि रचना को उत्कृष्ट बनाने के लिए रचनाकार अपनी कृति में विविध शैलियों का प्रयोग करता रहता है।

साहित्यिक कृति रिपोर्ट नहीं होती, अत: साहित्यकार रचना में रोचकता लाने के लिए उसे कलात्मक रूप प्रदान करता है। कलात्मकता लाने के क्रम में साहित्यकार विविध शैलियों का प्रयोग करता है। इलाचन्द्र जोशी ऐसे ही साहित्यकार हैं जो अपने उपन्यास साहित्य में प्रभावोत्पादकता लाने के लिए विविध शैलियों का प्रयोग किया है। वर्णनात्मक, मनोविश्लेषणात्मक, पूर्वदीप्ति और आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग इलाचन्द्र ने विशेष रूप से किया है। उल्लेखनीय है कि इलाचन्द्र मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासकार माने जाते रहे हैं। पात्रों के भाषण उनके मन: स्थिति को व्यक्त करने के लिए नियोजित किया गया है। इलाचन्द्र ने अपने अधिकांश उपन्यासों में दुर्बल चरित्र नायकों को स्थान दिया है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि दुर्बल नायकों का चरित्र-चित्रण कृतिकार की सूक्ष्म विश्लेषण दृष्टि की अपेक्षा रखता है, "दुर्बल नायक का चरित्र-चित्रण करने में बहुत बारीक कला की आवश्यकता होती है।"[2] वस्तुत: इलाचन्द्र एक कवि थे अत: उनके सुकुमार कोमल हृदय का प्रभाव उनकी रचनाओं में देखने को मिलता है।

कहना अनुचित न होगा कि इलाचन्द्र द्वारा अलग-अलग उपन्यासों में प्रयुक्त शैलियों पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

इलाचंद्र जोशी का प्रथम उपन्यास सन् 1929 में 'घृणामयी' नाम से प्रकाशित हुआ था जिसका पुन: प्रकाशन 'लज्जा' के नाम से सन् 1950 में करवाया गया जिसमें एक आधुनिक स्त्री लज्जा के चरित्र को विश्लेषित किया गया है। उपन्यास की मुख्य पात्र लज्जा अपनी कथा को उपन्यास में बताती है। कदाचित यही कारण है कि बहुत से आलोचक इस उपन्यास को आत्मकथात्मक शैली में लिखा हुआ मानते हैं, "इस शैली में लिखे गये उपन्यास में एक पात्र सारी कथा कहता है। हम उस पात्र से पूर्ण परिचय प्राप्त करके उसके चारों ओर के वातावरण से भी परिचित हो जाते हैं। इस सामीप्य और घनिष्ठता का परिणाम यह होता है कि हमें सब कुछ स्वाभाविक और अपनापन लिये हुए प्रतीत होता है।"[3] यहाँ पर इस शैली से तात्पर्य आत्मकथात्मक शैली से है। 'घृणामयी' या 'लज्जा' उपन्यास सिर्फ आत्मकथात्मक शैली में नहीं लिखा गया है, बल्कि विश्लेषणात्मक और कुछ मात्रा में व्याख्यात्मक शैली का प्रयोग हुआ है, "ऐसे ही 'सुनीता', 'लज्जा' और 'संन्यासी' विश्लेषणात्मक उपन्यास हैं, किन्तु इनमें कई अवसरों पर कतिपय विषयों की व्याख्या कर दी गई है।"[4] कहा जा सकता है कि एक कृति में एक से अधिक शैलियों का प्रयोग किया जा सकता है। 'घृणामयी' उपन्यास में पूर्वदीप्ति शैली का पुट भी मिलता है। उपन्यास की आरम्भिक पंक्तियों के माध्यम से इस बात की पुष्टि होती है, "घृणा! घृणा! मेरी सारी आत्मा आज घृणा के भाव से ओत-प्रोत है। मुझ हत्यारी नारी ने आज समस्त प्रकृति को, सारे विश्व को अपने अंतस्तल की घृणा से लीप-पोत कर एकाकार कर दिया है। इस अंनत सृष्टि का अस्तित्व ही आज मेरे लिए केवल घृणा को लेकर है।"[5]

'संन्यासी' उपन्यास पूर्वदीप्ति, आत्मकथात्मक और मनोविश्लेषणात्मक शैली में लिखा गया है, "आज एक-एक करके अपने जीवन की सभी पुरानी बातें याद आ रही हैं। बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में मैं एम. ए. प्रीवियस में पढ़ता था। अंग्रेज़ी-विभाग के विद्यार्थियों से मेरी बनती न थी, इसलिए फोर्थ हॉस्टल में संस्कृत-विभाग के विद्यार्थियों

के साथ रहता था।"[6] नायक अपने वर्तमान की कथा न सुना कर उसके जीवन की पूर्व में घटी घटनाओं को पाठकों को सुनाता है। नायक अपनी कथा के साथ-साथ उपन्यास के दूसरे पात्रों की कथाएँ भी पाठकों को सुनाता है। प्रस्तुत उपन्यास में कथा के विकास क्रम में नायक अपने मन के भाव का विश्लेषण करने के साथ-साथ दूसरों के मन के भाव, अनुभूतियों, संवेदनाओं, ग्रंथियों, वासनाओं, अहमन्यतापूर्ण कृत्यों इत्यादि का विश्लेषण उपन्यास के अनेक स्थलों पर करता चला जाता है। मनोविश्लेषणात्मक शैली का उपन्यास होने के कारण उपन्यास में पात्रों की छोटी से छोटी क्रिया का स्पष्टीकरण किया गया है। उपन्यास में न सिर्फ नन्दकिशोर का बल्कि शांति, जयन्ती, बलदेव, कैलाश, नन्दकिशोर के भैया और भाभी आदि पात्रों की क्रियाओं का स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया गया है। संवाद शैली का प्रयोग उपन्यास में यथा स्थान पात्रों के बीच करवाया गया है, जो देखते ही बनते हैं। संवाद के माध्यम से पात्रों के मन:स्थिति का विश्लेषण किया गया है।

शैली के दृष्टिकोण से 'प्रेत और छाया' इलाचन्द्र का पहला उपन्यास है, क्योंकि आपने इस उपन्यास को आत्मकथात्मक शैली में न लिखकर अन्य पुरुष शैली में लिखा है। उपन्यास समस्या अध्ययन (केस अध्ययन) या समस्या इतिहास (केस-हिस्ट्री) पर आधारित प्रतीत होता है। पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग कर उपन्यासकार ने उपन्यास के नायक पारसनाथ से उसके जीवन में घटी घटनाओं को बाहर निकलवाया है। पात्रों का मनोविश्लेषण और उनके कार्यों का ब्योरा उपन्यास में नाटकीयता की सृष्टि करता है। वस्तुतः पात्रों के परिचय में विवरण विधि का प्रयोग किया गया है। उपन्यास में पारसनाथ का जो चरित्रांकन हुआ है, वह पारसनाथ के प्रति पाठक को कभी संवेदनशील बनाता है, तो कभी पाठक के मन में उसके प्रति उबाल लाता है। उपन्यास में पारसनाथ के चरित्र को विश्लेषित करने के लिए मंजरी और नन्दिनी नामक दो मुख्य नारी पात्रों के साथ ही कई अन्य नारी पात्रों का सहारा लिया गया है। नायक का मिलन मुख्य नायिका के साथ न हो कर भी उपन्यास का अन्त सुखांतक हुआ है। उपन्यास में इलाचन्द्र ने उन परिस्थितियों का विश्लेषण किया है जिसका प्रभाव मनुष्य के अंतर्मन पर

पड़ता रहता है। आत्म स्वीकारोक्ति के बीज से पात्रों के प्रति पाठक के मन में दया भाव ही उठता है, "मैं सच कहता हूँ, मंजरी, आर्थिक विवशता ने मेरे जीवन की मूल गति को ही अत्यन्त निष्ठुरता से रूँध डाला है।"[7]

इलाचंद्र ने 'निर्वासित' में मानव मन की जटिलताओं का विश्लेषण करने के क्रम में अनेक घटनाओं को उदघाटित किया है। महीप के इलाहाबाद आने की घटना के बाद उपन्यास में और भी कई घटनाएँ होती चली जाती हैं। घटनाओं का प्रयोग चरित्र के उद्घाटन में किया गया है। कहना अनुचित न होगा कि प्रस्तुत उपन्यास घटना-प्रधान उपन्यासों की श्रेणी में रखा जा सकता है। उपन्यास को विस्तृत स्वरूप देने के लिए अनेक कथाओं को समाहित कर उनका विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास की कथा और घटनाएँ दोनों दुखांतक हैं। महीप को नीलिमा सहित उसकी दो अन्य बहनें ठुकरा चुकी थीं। उपन्यास में किस्सागोई का उत्कृष्ट प्रयोग किया गया है। उपन्यास में सिर्फ मनोविश्लेषण नहीं किया गया है, बल्कि समाज में हो रही घटनाओं का उल्लेख भी है। कहना अनुचित न होगा कि उपन्यास त्रासदीपूर्ण और दुखांतक होने के कारण रोचक बन पड़ा है, "यदि नीलिमा ने समय रहते उसका साथ दिया होता तो संभवतः उसका जीवन आज इस हद तक उजाड़ न हुआ होता।"[8] नीलिमा, शारदा देवी और उसकी बड़ी बहन, धीराज सिंह आदि की कथाएँ भी त्रासदीपूर्ण ही हैं।

इलाचंद्र जोशी का 'मुक्तिपथ' विषय-वस्तु की दृष्टि से उनका सर्वथा नूतन उपन्यास है। आपका उपन्यास लेखन का उद्देश्य प्रस्तुत उपन्यास के संदर्भ में बदला हुआ प्रतीत होता है, क्योंकि उपन्यास में आपने व्यक्ति संवेदना के स्थान पर मानवीय संवेदना को महत्व दिया है। अन्य पुरुष की शैली में होने के कारण वर्णन की शैली को अपनाया गया है। उपन्यास में कथा को गढ़ा गया है; कहने का तात्पर्य यह कि उपन्यास को रोचक बनाने के लिए किस्सागोई का सहारा लिया गया है। उपन्यासकार अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए राजीव नाम के पात्र को उपन्यास का नायक बनाया है। समाज और देश संबंधी अपने विचार इलाचंद्र ने इसी पात्र के माध्यम से उपन्यास में प्रस्तुत किया है। पात्रों के चरित्र का विकास मनोविश्लेषणात्मक तरीके से किया गया है तथा उनके विचारों को

लंबे-लंबे भाषण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। नायक स्वयं का आत्मविश्लेषण करता तो है, किन्तु आपके पूर्व उपन्यासों की तरह वहीं तक स्वयं को सीमित न रखकर समाज कल्याण के कार्य की ओर अग्रसर होता है। समाज में उच्चादर्श को स्थापित करने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपन्यास का अंत नायक-नायिका के अलगाव से होता है।

'जहाज़ का पंछी' मुख्यतः आत्मकथात्मक शैली में लिखा होने पर भी इसमें अन्य शैलियों का प्रयोग किया गया है। उत्तम पुरुष शैली में लिखित उपन्यास का आरम्भ नायक द्वारा अपनी कथा वाचन से होता है। नायक अनेक स्थानों पर अपनी जीवन स्थितियों का विश्लेषण भी करता है और विवरण भी देता है। उपन्यास एक युवक के भटकाव को उद्घाटित करता है, जो उसके द्वारा कम और समाज नियोजित अधिक प्रतीत होता है। उपन्यासकार ने उपन्यास में लगभग सब कुछ रख देने की कोशिश की है। कदाचित यही कारण है कि उपन्यास एक ओर जहाँ घटना प्रधान प्रतीत होता है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक, तो कुछ विशेषताओं के कारण मनोवैज्ञानिक। उपन्यास के कथ्य में प्रभावोत्पादकता लाने के लिए उपन्यासकार ने कथा का विस्तार अलग-अलग प्रसंगों में किया है। उपन्यासकार ने शीर्षक को चरितार्थ करने के लिए नायक को अनेक जहाज़ों के चक्कर कटवाता है। उपन्यास समाप्त हो जाता है लेकिन नायक की यात्रा समाप्त नहीं होती है। अकेले व्यक्ति का जीवन कैसा होता है इसका सहज स्वाभाविक चित्रण उपन्यास में किया गया है। उत्तम पुरुष शैली के उपन्यासों की एक प्रमुख विशेषता यह होती है कि इसमें रचनाकार अपने विचारों को सीधे-सीधे ढालता चला जाता है जो इलाचंद्र ने प्रस्तुत उपन्यास में किया है। इस प्रकार की शैली में विचार विश्लेषण करना दूसरे विधि या शैली से रचे गये उपन्यासों की तुलना में सरल होता है। संवाद शैली का प्रयोग उपन्यास में व्यापक रूप में हुआ है। पात्रों ने अपने संवाद से अपने विचारों का स्पष्टीकरण दिया है। नायक और करीम चाचा संवाद, नायक-प्यारे संवाद, नायक-बेला संवाद, नायक-लीला संवाद आदि ऐसे उदाहरण हैं जिससे प्रतीत होता है कि पात्र अपने कमज़ोरियों, असफलताओं, अपनी मानसिकता के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण प्रस्तुत कर रहे हैं। इसमें दो युवाओं के बीच के संवाद तथा नायक और पुलिसवाला के बीच जो संवाद

हुआ है उसके द्वारा मनुष्य की संवेदना और उसकी बौद्धिकता पर प्रश्न उठाया गया है। उपन्यास में भाषण का प्रयोग भी अधिक स्थानों पर हुआ है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इलाचंद्र जोशी के उपन्यासों में हमें किसी एक शैली के दर्शन नहीं होते, बल्कि प्रायः सभी प्रकार की शैलियों के दर्शन हमें उनके उपन्यास साहित्य में होते हैं। पात्रों का चरित्र चित्रण करने के लिए इन्होंने आत्म विश्लेषण शैली का प्रयोग किया है। भाषा-शैली, संवाद, वाक्य गठन, भाषा के रूपों का प्रयोग, मुहावरों-कहावतों आदि का प्रयोग शैली में रोचकता लाने के लिए किया गया है| उपन्यास आदि में जो कथा होती है उसके चित्रण और विस्तार में शैली की महती भूमिका होती है यह स्पष्ट हो चुका है। इलाचंद्र जोशी ने एक ही उपन्यास में अलग-अलग शैली का प्रयोग किया है। शैली का प्रयोग उपन्यासकार के उद्देश्य पर निर्भर करता है। जिस उपन्यास का उद्देश्य चरित्र का उद्घाटन करना है उसमें आत्म विश्लेषण तथा मनोविश्लेषण का प्रयोग अधिक किया गया है तथा जीवन स्थितियों को प्रस्तुत करने के लिए विवरण विधि का प्रयोग हुआ है।

इलाचंद्र जोशी के उपन्यास की भाषा के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि इनकी भाषा प्रसंगों एवं पात्रों के अनुकूल है। साधारण बोलचाल की भाषा के साथ ही आपनेअंग्रेज़ी, संस्कृत, बांग्ला और उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है। उदाहरणार्थ इनजाइना पिक्टोरिस, टैक्निक, हिप्नोटिक, हौलनाक, हिंस्र, लोमहर्षक, छेपेछे, लूची, गैन, शुक्कर, जनाब, रूहानी, हकीकत आदि शब्दों का प्रयोग आपके उपन्यासों में हुआ है। पात्रों की भाषा को स्वाभाविक बनाने के लिए शब्दों का अलग प्रकार से प्रयोग कर नए प्रकार के पद बनाये गये हैं। जैसे- मन के भी मन के नीचे। इसके अतिरिक्त कुछ टूटे या बिगड़े शब्द जैसे- सिरफ, तजरबा, टैम आदि का प्रयोग पात्रों के देशीपन की ओर इंगित करने के लिए किया गया है। हिंदी और उर्दू के कहावतों का प्रयोग भी अधिक मात्र में देखने को मिलता है, 'माले मुफ्त दिले बेरहम, लुटिया डुबोना, राग अलापना, घोड़ा बेच कर सोना।'[9] शब्दों के बीच योजक चिह्नों का प्रयोग शब्द का

अलग अर्थ देने के लिए अधिक मात्रा में हुआ है। कम शब्दों में सारगर्भित अर्थ बताने के लिए सामासिक शब्दों का प्रयोग आपके उपन्यासों की विशेषता बन गयी है।

संदर्भ सूची

1.http://ir.unishivaji.ac.in:8080/jspui/bitstream/123456789/2449/8/08_Chapter%204.pdf

2. जोशी, इलाचंद्र. *साहित्य चिंतन*, पृ.101

3. शर्मा, मक्खनलाल. *हिन्दी उपन्यास: सिद्धान्त और समीक्षा*, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-1965, पृ.100

4. भटनागर, प्रेम. *हिन्दी उपन्यास शिल्प: बदलते परिप्रेक्ष्य*, अर्चना प्रकाशन, जयपुर, संस्करण-1968 पृ.45

5. जोशी, इलाचंद्र. *घृणामयी*, हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर प्रकाशन, बम्बई, संस्करण-1929, पृ. 01

6. ---. *संन्यासी*, लोकभारती पेपरबैक्स प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2015, पृ. 07

7. ---. *प्रेत और छाया*, भारती भणडार प्रकाशक, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण- 1947 पृ.- 173

8. ---. *निर्वासित*, भारती भण्डार प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-1946 पृ.-371

9. ---. *जहाज़ का पंछी*, लोकभारती पेपरबैक्स प्रकाशन, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण 2011

ऋषिकेश श्रीवास्तव

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

पता- तिवारी बाड़ी,सांता डंगाल बर्णपुर, पश्चिम बर्द्धमान 713325 (प. बं.)

काव्य खंड

कश्मीर की औरत

-आशमा कौल

कश्मीर में सिर्फ
सुंदरता और आतंक नहीं
कश्मीर में रहती हैं
लड़कियाँ और औरतें भी
वे लड़कियाँ जिनकी नीली आँखों में बसा था
खुशनुमा सपनों का संसार।
जो मन ही मन
गुनगुनाती थी प्यार के गीत
महकती वादियों में
मतवाली धुनों पर।
कश्मीरी औरतें जो
पका रही हैं हरा साग खुद ज़र्द होकर
लेकिन उनका दुःख
कोई जान नहीं पाता
उनकी खूबसूरती लगने नहीं देती
पता उनके दर्द का
आँसुओं को छिपाती
अपने फेरन के बाज़ू से
और लगी रहती सुबह शाम
अपने काम में।

कश्मीर की औरतें, औरतें हैं
हिन्दू-मुस्लिम नहीं
उनका दु:ख बड़ा है
गीता के श्लोकों और कुरान
की आयतों से
वे एक-दूसरे का दर्द समझती हैं

पंडित औरत ने देखा है
सीने पर गोली खाते
अपने निर्दोष बच्चे को
मुस्लिम औरत भी पीटती है छाती अपनी
जब जेहादी ले जाते हैं जबरन
उसके मासूम बच्चे को।

कश्मीर में सिर्फ सुंदरता और आतंक नहीं
कश्मीर में रहती हैं लड़कियाँ और औरतें भी।

औरतें बँटना नहीं चाहती
धर्म के खेमों में
पर बाँट दिया जाता है उन्हें
उन्हें आती है याद
पुरानी बातें मुलाकातें
जब वे मिल कर गाती थीं, करती थीं रोफ़
खिलखिलाती थी
शिवरात्रि और ईद के त्योहारों पर।
केसर वाले कहवे की खुशबू
जब फ़ैल जाती थी
उनके आँगनों में
सुहाग गीत गाए जाते थे
और मनाई जाती थी
मिलकर जश्न से
हर खुशी परिवार की
बादाम वाली फिरनी के संग।
अब पंडित औरतें
सुखा कर आँसूओं को
पहुँच गई हैं
जम्मू के जगति कैम्प में

अपने परिवारों के संग और
पीछे रह गई हैं
उनकी मुस्लिम सहेलियाँ
जिनके साथ बांटा था उन्होंने
हर सुख-दुःख जीवन का
उनका यह दर्द
कुछ आतंकी पुरुष नहीं समझ पाते
वे तो अपने मज़हब के
नशे में चूर
नहीं समझना चाहते
अपनी औरतों का दर्द
नहीं देखना चाहते उनकी आँखों के आँसू
वे सिर्फ ज़िंदाबाद के नारे
लगाना जानते हैं
वे भूल चुके हैं
मीर और ललदैद के वाख
वे नहीं जानते बच्चे के बिछुड़ने पर
माँ की नाभि और स्तनों में
कैसा दर्द होता है
वे उन औरतों का दर्द भी नहीं
समझना चाहते
जिनके सुहाग को लील गया है
यह जिहादी आतंकवाद।

कश्मीर में सिर्फ सुंदरता और आतंक नहीं
कश्मीर में रहती हैं लड़कियाँ और औरतें भी।

जगति कैम्प में रहती
पंडित औरतों के आँसू और
कश्मीर में मुस्लिम औरतों के आँसू का

रूप रंग एक-सा है
वे दूर ज़रूर हैं लेकिन
दर्द के धागे से जुड़ी हुई हैं
औरतें एक-दूसरे का
दुःख समझती हैं क्योंकि
जुड़े रहते हैं उनके मन के तार
आपस में।
कश्मीरी लड़की की
नीली आँखों में
अब नहीं आते सुन्दर सपने
सहम जाती है वह सपनों में भी
गोलियों की आवाज़ सुन और उसकी माँ
छिपा लेती है उसको
अपने दुपट्टे में और फुसफुसाती है
उसके कान में कि
वह उसकी और कश्मीर की खूबसूरती पर
लगने नहीं देगी

इस आतंक का ग्रहण…पता: आशमा कौल , 2665/16
एस. पी. रोड, फरीदाबाद- 121002, हरियाणा
मोबाईल नंबर 9868109905

अतीत के झरोखे से

कभी कभी अतीत
ऐसे ही बोल उठता है
जैसे बरसों के बिछड़े
किसी अनजान सफ़र पर
चलते हुए टकराए
जैसे आस मिलन की हो
और मीत खो जाए
जैसे वापस आ पाना संभव न हो
कोई तार मिल जाए।

यह वक्त की लड़ियां हैं श्रीमन् !
टूटती बिखरती हैं
फिर जुड़ जाती हैं
वक्त तो अपना इतिहास
लिख देता है
वहीं कहीं धुंधलके में
होती हैं हमारी स्मृतियां
सब कुछ रेत की तरह छूट जाता है।

हम क्या कहें
समय ने हमें छला है
या
हम समय की धड़कनों को
महसूस नहीं कर सके
जो जहां था जैसा था
हमने किसी को छुआ नहीं
किसी को कुछ कहा नहीं
चलते गए इस पार उस पार
हमें क्या पता था

किसने हमें रोका, किस ने हमें टोका।

नदी की धार हो
या पर्वतों की श्रृंखलाएं
कंदराएं खाइयां
समुद्र का गरजता वेग
हमने तो प्यार ही बांटा
अंधेरा हो या प्रकाश
हर जगह आवाज़ को गले लगाया है
पलक पांवड़े बिछाएं हैं
हमें क्या पता
पानी बह चुका है
सब कुछ ढह चुका है।

कंदराएं खाइयां
पट चुकी हैं
समंदर का वेग शांत हो गया है
किस को आवाज़ दें
पर्वतों से टकरा कर
वापस लौट आती हैं
हम जहां कल थे
हम जहां कल होंगे
हम तो वही हैं जहां थे
जहां हमें होना था
बस मील के पत्थर बदल चुके हैं
नेम प्लेटें लग चुकी हैं
अंदर आना मना है।

महाराज कृष्ण भरत

बदलता कश्मीर

डॉ. मुक्ति शर्मा

मैं गाथा शौर्य की बताने आई हूं।
दफन जो इतिहास हुआ उसे जगाने आई हूं।
वीरों ने दी जो कुर्बानियां वह सुनने आई हूं।
एक नया कश्मीर मैं सामने लाई हूं।
स्वर्ग की खूबसूरती बताने आई हूं।
हर घर में झंडा लहरा रहा।
दुश्मनों की बेबसी बताने आई हूं।

मिलजुल कर रह रहे भाईचारे की दास्तान सुनने आई हूं।

यहां नमाज़, आरती एक ही जगह सुनाई दे
ऐसा विकसित भारत दिखाने आई हूं।
यहां चारों ओर केसर लहराऐ।
बर्फ की चादर से ढका कश्मीर दिखाने आई हूं।
जहां एक ही थाली में खाना खाया जाए।
ऐसा मनमोहक दृश्य दिखाने आई हूं।
मैं गाथा शौर्य की बताने आई हूं।

पुरुष कंजूस होते हैं

-डॉ. रंजना जायसवाल

पुरुष कंजूस होते हैं
सही सुना आपने
पुरुष कंजूस होते हैं
खर्च नहीं करते
वो यूँ ही बेवजह
अपने आँसुओं को
क्योंकि उन्हें बताया जाता है
बचपन से तुम मर्द हो
और मर्द को कभी दर्द नहीं होता
वे खर्च नहीं करते
अपने जज़्बातों को
क्योंकि उन्हें सिखाया जाता है
तुम कमज़ोर नहीं हो
क्योंकि ये काम है औरतों का
वे टूट नहीं सकते
ज़िंदगी की जदोजहद से
क्योंकि उन्हें सिखाया जाता है
ये काम है कायरों का
सहेज लेते हैं
वो अपनी आँखों में
छिपा देते हैं मन की किसी दराजों में
क्योंकि वे बेवजह खर्च नहीं करते
अपने अहसासों को
सचमुच…
पुरुष बहुत कंजूस होते हैं।

-डॉ. रंजना जायसवाल
लाल बाग कॉलोनी, छोटी बसही, मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश, पिन कोड 231001

आशा

मूल कवि- निसार आज़म,
अनुवादक- डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट

भौर होते ही उसने द्वार खोला
देखा अपनी दहलीज़ से
मेरी दहलीज़ तक एक विशाल दर्रा
जो अगम्य-असीम थी।
दोनों आँगन सरसब्ज़
और खिलते
पुष्पों, झाड़ियों, सुगन्धित पौधों से घिरे
कुछ खिले कुछ अधखिले।
इस भयानक भव्य दर्रा ने
धीरे-धीरे और तेज़ी से घेर ली
हमारी सदियों पुरानी दूरदर्शी आँखें
पारदर्शी ज्योति
कुल उत्पाद हमारी निस्स्वार्थ प्राथनाओं का
निर्मल-निरीह बच्चे की क्रियान्वित भावनाएँ।
हमारे संबंधों के टिमटिमाते आकाशगंगा
घिरा हुआ है सदियों पुराने
पगलाए ब्लैक होल से ...
सुझाव विरक्त हुए
स्नेह लुप्त हुआ
दर्रा अधिक गहरी असीम होती गई
गठरी बांधे बाज़ार चले
अपनी संस्कृति और परंपरा लेकर
नीलाम कर दी

नुन्दरेशी और लालेश्वरी का
सम्पूर्ण लोकाचार
अन्धकारित दर्रा ने अस्तित्व को गर्त में डाला
पहचान और लोकाचार के साथ
सम्पूर्ण जीवन झेलते रहे यही पीड़ा
यही पीड़ा देती रही कालांतर से घुटन।

हमारी आशाओं और उमंगों की तड़प,
सम्पूर्ण पारदर्शी ज्योति
आक्रोशित आँधी छितरायी।
आ चल दोनों दूर चलते हैं
सम्पूर्ण राग-द्वेष, सारी घृणा
सारी लालायित इच्छाओं से
घायल आँखों की पीड़ा से।

सारी अनुप्रयुक्त उलाहना और प्रत्युत्तर अभियोग
प्रतिद्वंद्वी के आतंरिक विष-पीड़ा
को इस गहरी दर्रा में दफ़न करते हैं
और वसंत की प्रतीक्षा करें
उस समय तक
जब इस दर्रा के चहुदिशा में
पुलकित होंगें रंगीन फूल
स्नेह-प्रेम और शुभाशा के पुष्प खिले।

लालसा

आकस्मक, एक जीवन पश्चात्
व्याप्त हुआ सर्वत्र हाहाकार

उभरा यहाँ फिर से जलोदभावा
वेश बदल कर
एक नए आकार में वह
नए नाम के साथ, नए रूप में
गाँव-शहर में घूमता रहा
बाँसुरी बजता, मुग्ध करता
जिसे जो सुनता, चल पड़ता पीछे उसके
मोहित करता वह
एक अजीब ढंग से
मुग्ध विचारों को आकर्षित करता
हर गली-नुक्कड़ में बिछा दिया है उसने जाल
सामने जो भी आता है, निगल जाता है
मासूम वसंत को लूटा है उसने
गाँव-शहरों को लूटा है उसने
हे मेरे ईश्वर
भेज दे किसी और को भी
इस धरती पर
कोई कश्यप ऋषि जैसा
जो फिर से एक दरार बना दे
खादन्यार पर
जो शांत समुद्र को गति दे
स्वर्णिम पुष्प खिलेंगे
ऋषियों की भूमि पर
जलोदभावा लुप्त हो जाएगा।

मूल कवि- निसार आज़म